सच बताओ डर गई क्या संकटों के नाम से ?
या हुआ अपराध कोई इस अभागे राम से ?

लक्ष्मण—आह ! भ्राता जी ! हम इतने दुःख कैसे भरेंगे ? इस महान् आपत्ति को किस प्रकार सहन करेंगे ?

राम—हम ही नहीं लक्ष्मण ! देखो, जानकी के वियोग में पंचवटी भी कैसी उदास हो रही है। माना कली-कली निराशा में प्राण खो रही है :—

कहां वह फूल—फुलवारी कहां वह दिव्य उपवन है।
जहां फूला-फला घर था वहां उजड़ा हुआ वन है॥

लक्ष्मण—निस्संदेह भ्राता जी ! जिस स्थान से हटने का मन नहीं चाहता था आज वही काटने का आता है। जिस पर्ण-कुटी की छाया में विश्राम किया करते थे आज उसी को देखकर हृदय कांप जाता है :—

लताएं वृक्ष बदले, ताल बन सब के ही ढब बदले।
हृदय के भाव जब बदले तो जड़-चैतन्य सब बदले॥

राम—हां देखो तो ! ये वृक्ष भूत बने हुए मुझे डरा रहे हैं; जगल के पक्षी मेरी हसी उड़ा रहे हैं। मृग और सियार मुझ पागल समझते हैं, कायल और कबूतर मेरे रोने पर हंसते हैं।

हाय प्यारी बिन तेरे क्या दुःख उठाने हो गये।
हो गया शत्रु जगत अपन बेगाने हो गये॥

लक्ष्मण—क्यों नहीं प्रभो ! वियोग की दशा में ऐसा ही होता है, रोने वाले के साथ कौन रोता है।

राम—और इधर भी देखा ! ये पाषाण की शिलाएं क्यों मलीन हुई जाती हैं ? ये ओस की बून्द किस के लिये आंसू बहाती हैं ? क्या इनको भी जानकी की याद सता रही है ? क्या उनको भी विरह की अग्नि जला रही है ? अरे वृक्षो ! तुम तो यहीं खड़े थे; बताओ जानकी कहां चली गई ? अरे पशुओं ! तुम तो आस-पास ही विचर रहे थे ! क्या तुम ने भी उसको नहीं

देखा ? हे आकाश में भ्रमण करने वाले सूर्य देव ! तुम तो संसार पर दृष्टि रखते हो तुम ही बताओ कि जानकी किस परदे में जा छिपी ? ओह ? कोई नहीं बोलता ? सब ने मौन साध लिया है, सब के मुंह में ताले पड़ गये हैं ? किस से पूछूं ?

भाग्य ही जब फिर गया अपना बेगाना फिर गया।
जानकी क्या फिर गई सारा जमाना फिर गया॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ? आप तो धैर्यवान हैं; फिर इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं ?

टलता नहीं वह संकट जो भाग्य में लिखा है।
रोता है मूर्ख, ज्ञानी हंस-हंस के झलता है॥

राम—(अपने विचारों में) तो क्या मैं पागल हो गया हूं ? क्या मैं बहकी-बहकी बातें करने लगा हूं ? नहीं, नहीं ? मैं तो होश में हूं। फिर ये दिशाएं मेरी सूरत से क्यों भागी जा रही हैं ? वृक्षों की टहनियां मुझे देख देख कर सिर क्यों हिला रही हैं ? चलो लक्ष्मण ? अब हम भी इन्हें छोड़ कर कहीं और चलें।

बनायेंगे किसी निर्जन गुफा में अब ठिकाना हम।
कहीं तो ढूंढ लेंगे मुंह छिपाने का बहाना हम॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ? मन को शान्ति दीजिये और सावधान होकर जानकी जी का पता लगाने की चिन्ता कीजिये।

राम—हां भाई ? चलो; अब यहां जी भी काहे को लगेगा ? जानकी के बिना तो संसार ही सूना हो गया :—

गाना (कंकर ककर से मैं पूछूं शंकर·····)

जंगल-जंगल भ्रमता डोलूं प्यारी मेरी कहां है ?
कौन बताये, कौन बताये।
वृक्ष मौन पशु-गूंगे, सरिता भागी जाती;
सन् सन् पवन करे मोरी निन्दा वरण देख इठलाती;

धीरज कहता है मैं जाऊं, मन की हंसी कहां है ?
कौन बताये·····
विरही को दिन सूने लगते, रातें महा डरानी;
सोते तेरे होते जग की विप्ता कुछ न जानी;
जब था यह वनवास सुहाना अब वह घड़ी कहां है ?
कौन बताये·····

[दोनों का जाना परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(बन का मार्ग)

[जटायु घायल पड़ा है-राम लक्ष्मण आते हैं]

राम—(स्वयं) काम के बाण; वृद्धावस्था का शोक और विरह की अग्नि इतनी प्रबल होती है कि धैर्य भी मनुष्य का साथ छोड़ देता है, बड़े-बड़े साहसी वीरों की कमर तोड़ देता है। आह ! प्यारी अब तुम्हें कहां देखूं ? किस जगह तुम्हारी खाज करूं—

कुछ पता चलता नहीं तुम कौन से परदे में हो ?
कोई बतलाता नहीं किस दुष्ट के पंजे में हो ?

लक्ष्मण—देखिये भ्राता जी ! धनुष के टूटे हुए टुकड़े और वाणों की झड़ी हुई नोकें जो सामने पड़ी हुई नजर आ रही हैं वे किसी भयानक दुर्घटना का पता बता रही हैं।

राम—और रक्त की इन बून्दों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ कोई भारी उत्पात हुआ है, किसी जीव का प्राणाघात हुआ है।

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर) ओहो ! ये तो गृद्धराज जटायु जो घायल पड़े हैं ! सारा शरीर वाणों से छिदा हुआ है। नस-नस से रक्त बह रहा है।

राम—(पास जाकर) आह ! गृद्धराज ! यह क्या हो गया ? आप की यह दशा किसने बनाई है ? ओह ! आपके शरीर में तो बहुत ही चोट आई है।

जटायु—क्या बताऊं महाराज। आज मैं इसी स्थान पर भ्रमण कर रहा था कि दुष्ट रावण जानकी को चुराये हुये इसी मार्ग से आया, मैंने उस निर्दयी को बहुत समझाया, हर प्रकार से ऊंच-नीच दिखाया, परन्तु अभिमानी की समझ में कुछ भी न आया। अन्त में जब वह किसी प्रकार जानकी को छोड़ने पर राजी न हुआ तो मैंने उसका सामना किया। परन्तु नाथ! उस अन्यायी के सामने मेरी पार न बसाई और उसने अग्नि बाण छोड़ कर मेरी यह दशा बनाई।

राम—(स्वयं) ओह! दुष्ट रावण! अब तेरे पापों का घड़ा भर आया है, जो तूने सोते हुये सिंह को जगाया है। याद रख यदि मैं राम हूं तो इस अपमान के बदले तेरा वंश मिटा दूंगा, लंका की ईंट से ईंट बजा दूंगा।

कह रहा हूं अब कसम खाकर धनुष की, बाण की।
वीरता की, धीरता की, धर्म की, सम्मान की॥
आन है रघुवंश की, सौगन्ध कुल के मान की।
जानकी ग्राहक बनेगी दुष्ट तेरी जान की॥
जो बचाने को सकल ब्रह्माण्ड चलकर आएगा।
राम के हाथों से तू फिर भी न बचने पाएगा॥

जटायु—धन्य है, रघुकुल भूषण! धन्य है!

राम—जटायु महाराज! आपने बड़ा उपकार किया जो जानकी का पक्ष लेकर इतना कष्ट सहा। अब यदि आपको प्राणों की ममता हो, तो कुछ उपचार किया जाये।

जटायु—नहीं भगवन्! मैं धर्म के लिये प्राण दे रहा हूं और अन्तिम बार मुख से आपका नाम ले रहा हूं। आप साक्षात् मेरे सामने विराजमान हैं और आपके कमल रूपी चरणों में मेरा ध्यान है; फिर इससे अच्छा अवसर कब आयगा जबकि यह अधम जीव अमरपद पायगा?

राम—अच्छा प्यारे ! यदि यही इच्छा है तो तुम देव लोक चले जाओ परन्तु वहां जाकर पिता जी को यह वृतान्त न सुनाना। यदि मैं राम हूं, तो रावण कुछ ही दिनों में वहां पहुंच जाएगा और सारा वृतान्त अपने मुंह से ही सुनायेगा :—

बढ़ चुका है बहुत कुछ मिटने को अब अन्धेर है।
पाप का विध्वन्स होने में पलों की देर है॥

जटायु—अच्छा नाथ ! अब विदा कीजिये और अपने चरणों में विश्राम दीजिये·····मैं·····सदैव·····राम·····राम·····सीता·····राम।

[प्राण त्याग देना]

राम—लक्ष्मण ! जटायु महाराज ने हमारे साथ पिता-तुल्य व्यवहार किया है, इनका अन्तिम संस्कार हम स्वयं अपने हाथों से करेंगे। और सरिता-किनारे चलकर इनको तिलांजलि देंगे।

लक्ष्मण—हां हाँ ! यही उचित है भ्राता जी ! चलिये !

[जटायु का मृतक शरीर उठाकर दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(शबरी की कुटी)

शबरी—

गाना

भजन कर राम का मूरख यह जग झूठा पसारा है।
वही भव-सिन्धु उतरेंगे जिन्हें यह नाम प्यारा है॥
ये माया मोह के फन्दे न टूटे हैं न टूटेंगे।
बिना धुन राम-चरणों की कहां जन का गुजारा है॥
वहीं जन हैं सुखी जग में जिन्हें आधार है उसका।
वही परलोक में खुश हैं जिन्हें उसका सहारा है॥
वही रक्षक हुआ प्रहलाद का अग्नि की लपटों से।
उसी ने ग्राह से देखो 'कृशल' गज को उबारा है॥

गुरु मतंग मुनि ने वचन दिया है कि तुझे इसी जगह राम के दर्शन होंगे। परन्तु कब होंगे ? क्योंकर होंगे ? कैसे होंगे ?

आम गूलर में लगें ऐसा कोई साधन नहीं।
नीच को दर्शन मिलें ऐसे सुलभ दर्शन नहीं॥
स्वर्ग के स्वामी मेरी कुटिया में कैसे आएंगे।
वे तो पावन हैं अपावन को कहां अपनाएंगे॥

[एक साधु आता है और उससे शबरी का वस्त्र छू जाता है]

साधु—(रुष्ट होकर) अन्धी ! नीच ! चाण्डाली ! देखती नहीं कौन आ रहा है :—

लगी धुन राम-दर्शन की बड़ी आई भगत बनके।
उड़ाती फिर रही है धूल मारग में ऋषि जन के॥

शबरी—महाराज ! धूल नहीं उड़ाती, झाड़ू लगा रही हूं :—

अपावन, धर्म हीना, नीच-कुल और नीच जाती हूं।
घृणा की पात्र हूं संसार का कूड़ा उठाती हूं॥
न साधु-सन्त सेवा का मैं कुछ अवकाश पाती हूं।
इसी कारण से मारग में सदा झाड़ू लगाती हूं॥
कि रस्ता चलने वालों को न कोई कष्ट हो पाये।
जो आयें सन्त उनके पांव में कांटा न लग जाये॥

साधु—(कटाक्ष से) ओहो ! बड़ी धर्मात्मा है ! सारा धर्म तेरे ही तो हिस्से में आया है ! संसार के उपकार का बीड़ा तूने ही तो उठाया है :—

चल परे हट दूर हो बढ़-बढ़ के यूं बातें न कर।
तू करेगी सन्त-सेवा ? कोप से सन्तों के डर॥

शबरी—महाराज! यदि मैं भगवत्-भजन में ध्यान देती हूं तो आपका क्या छीन लेती हूं ?

साधु—क्या छीन लेती है ? अरी चांडाली! तू इतना भी नहीं जानता कि भगवान को धोखा देती है :—

नीच भी भजने लगेंगे जबकि पावन राम को ।
सन्त और साधु बता फिर लेंगे किसके नाम को ।।

शबरी—परन्तु भगवन् ! राम जब पावन हैं तो नीच के नाम लेने से अपावन कैसे हो सकते हैं ?

दयालु हैं दया-दृष्टि कभी इस ओर डालेंगे ।
महा पावन हैं तो मुझ नीच को पावन बना लेंगे।।

साधु—हां बना लेंगे ! अरी दुष्टा ! यदि भगवान तेरे घर आयें तो भ्रष्ट न हो जायेंगे ?

नीच घर आना भला भगवान को कब भायेगा ।
नीच को जब छू लिया तो धर्म क्या रह जायेगा ।।

शबरी—तो क्या भगवान नीच के कुछ नहीं, केवल शाप से ही उन्हें नाता है । महाराज ! उस पवित्र नाम से तो अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है; पातकी भी भवसागर तर जाता है :—

पिता है वह ही सब का और हम सब उसके बालक हैं ।
नहीं करते किसी में भेद वे सबके ही पालक हैं ।।
मिले हैं सबको साधन एक से भव-सिन्धु तरने को ।
हैं चारों वर्ण केवल अपना अपना कर्म करने को ।।

साधु—अच्छा ! तू अब इतनी अकड़ने लगी है कि अपने आपको भी साधुओं के समान समझने लगी है । ठहर ! जरा ये वस्त्र धोलूं फिर तुझे अच्छी तरह समझूंगा ।

[साधु का जाना, राम लक्ष्मण का आना]

शबरी—(देख कर) आ रहे हैं ! आह वे सुख के धाम इसी ओर आ रहे हैं ।

नहीं जो ध्यान में योगी-ऋषि जन के भी आते हैं ।
समाधि वास्ते जिनके बड़े ज्ञानी लगाते हैं ।।
वही रघुवीर आये हैं मुझे दर्शन दिखाने को ।
न देखा नीच-जाति को न मेरे कुल घराने को ।।

राम—कहो ! भक्तों में श्रेष्ठ शबरी ! चित्त तो प्रसन्न है ?

शबरी—अहा ! आइये महाराज ! पधारिये ! ओहो बड़े सुकुमार हैं, कामल किशोर, दया के भण्डार हैं। लाऊ ! पहले आसन लाऊ । नहीं, पहले चरण धुलाऊं, ओहो भूल गई पहले कुछ खिलाऊं फिर चरण दबाऊं-क्या करूं ! (पैर छूना)

राम—घबराओ नहीं देवी ! घबराओ नहीं। हम तो केवल प्रेम के भूखे हैं। तुम काहे को चिन्ता करती हो ?

शबरी—(हाथ जोड़ कर) क्षमा कीजिये महाराज ! बड़ी भूल हुई जल्दी में आपके चरण छू लिये। आप को फिर नहाना पड़ेगा।

राम—क्यों ? क्या हो गया ? क्यों नहाना पड़ेगा देवी !

शबरी—महाराज ! मेरे छू जाने से तो साधुओं के वस्त्र अशुद्ध जाते हैं। यदि मेरी छाया पड़ जाय तो लोग तुरन्त नहाते हैं। कोई मुझ नीच से पल्ला नहीं अपना मिलाता है। मेरा तो रास्ता भी छोड़कर संसार जाता है॥

राम—यह उनकी भूल है शबरी। मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से श्रेष्ठ माना जाता है :—

बड़प्पन,धन,कुटुम्ब,वैभव,सकल गुण और चतुराई।
न कुछ भी काम आयेंगे यदि भगतो नहीं पाई॥

शबरी—महाराज ! मैं नीच, कुजाति, कुबुद्धि और अज्ञान हूं ! मेरे से तो दूर रहने में ही संसार का कल्याण है।

राम—ऐसा न कहो शबरी ! जो धर्म का मूल सिद्धान्त नहीं जानते है वही जाति और वर्ण का भेद मानते हैं। जिसके मन में भक्ति और प्रेम का स्रोत बहता है, वह संसार में किसी को नीच नहीं कहता है। :—

है कोई चण्डाल या ऊंचा किसी का वंश है।
आत्मा सब की उसी परमात्मा का अंश है॥

शवरी—धन्य है भगवान ! आज आपने सारा भ्रम मिटा दिया ! ज्ञान का महा स्रोत बहा दिया। आश्चर्य है !

राम—इसमें आश्चर्य की क्या बात है देवी। धर्म तो नीच को ऊंचा बनाने वाला होता है; गिरे हुए को ऊपर उठाने वाला होता है :—

नीच है या ऊंच है या दुष्ट हत्यारा है वह।
जिस को प्यारा धर्म है भगवान को प्यारा है वह॥

शवरी—उपकार प्रभो ! महा उपकार !

राम—देवी ! भूख लग रही है। यदि कुछ खाने की वस्तु हो तो लाओ !

शवरी—अहो भाग्य ! क्या आप मेरे घर का कुछ खायेंगे ? नहीं महाराज इससे तो आप अवश्य ही अपवित्र हो जाएंगे।

राम—नहीं शवरी ! तुम कुछ संकोच न करो ! लाओ ! जो कुछ भी हो तुरन्त लाओ !

शवरी—तो महाराज ! मैंने तो झाड़ी के बेर तोड़ रखें हैं।

राम—हां-हां लाओ ! हमने ऐसे फल कहां चक्खे हैं। जल्दी लाओ !

शवरी—(लाकर) लीजिये भगवान !

गाना (जाओ २ न सताओ···)

शवरी—खाओ-खाओ स्वामी, अन्तर्यामी, मीठे मीठे बेर।
राम—लाओ-लाओ प्यारी शवरी लाओ मीठे तेरे बेर॥
अन्तरा शवरी—ये मेरे बेर हैं सूखे—कुछ स्वाद नहीं हैं रूखे।
" राम—ये तेरे बेर निराले—हैं भगती-रस के प्याले॥
शवरी—खाओ-खाओ स्वामी·····
शेर—मुद्दतों से बेर ये चुन-चुन के हैं मैंने धरे।
कब प्रभु आवें इधर भगवान भय-भंजन हरे॥
राम—प्रेम से चुन-चुन के इनको प्रेम डलिया में धरे।
बेर ने सूखे नहीं हैं, प्रेम के प्याले भरे॥

शबरी—ये बेर हैं सूखे—कुछ स्वाद नहीं हैं रूखे।
राम—ये तेरे बेर निराले हैं—भगती-रस के प्याले॥
खाओ-खाओ……

शबरी—(चख कर) यह लीजिये भगवन! यह बहुत मीठा है।
राम—अहा!:—

सूखे बेरों में जो मिला है यहां।
राज-भोगों में वह सुवाद कहां?

शबरी—यह भी चखकर देखिये प्रभो! इसमें और ही स्वाद है।
राम—निस्संदेह! यह बड़ा स्वादिष्ट है:—

बेर सूखा था परन्तु स्वाद का व्यन्जन बना।
प्रेम के हाथों में आकर राज का भोजन बना॥

शबरी—(लक्ष्मण से) यह आप लीजे महाराज।
लक्ष्मण—(एक ओर फेंक कर) अहा! (राम की ओर संकेत करके):—

महल के भोजन जिन्हें भाते न थे सद्भाव से।
आज वे ही खा रहे हैं बेर सूखे चाव से॥

शबरी—कुछ अच्छे तो न लगे होंगे भगवान।
राम—नहीं देवी? बड़े स्वादिष्ट हैं। लाओ? और भी लाओ—

है पत्ती शाक की या कन्द या मिश्री के कूजे हैं।
यहां तो प्रेम से मिल जाये जो उसके ही भूखे हैं॥

शबरी—लीजिये? और भी लीजिये? खूब पेट भर कर खाइये।
(चख कर) यह लीजिये? यह कुछ-कुछ खट्टा है।
राम—हां लाओ? यह भी लाओ—

स्वर्ग के पकवान हैं, मेवों के उत्तम ढेर हैं।
कौन कहता है कि ये झाड़ी के सूखे बेर हैं॥

लक्ष्मण—(एक ओर होकर स्वयं) क्यों नहीं:—

प्रेम के भूखे को क्या अच्छे बुरे का ज्ञान है।
प्रेम से गूलर मिले तो वह ही बस पकवान है॥

शबरी—कैसे लग रहे हैं भगवन् !

राम—क्या बताऊँ भक्तराज शबरी ! तुम्हारे बेरों की समानता तो अमरफल भी नहीं करता है, इनके खाने से पेट भरता है परन्तु मन नहीं भरता है :—

खट्टा-मीठा स्वाद ही पाते रहो ।
जी में आता है कि बस खाते रहो।।

लक्ष्मण—अच्छा भ्राता जी ! अब आगे की भी सुध लीजिये ! बेरों का स्वाद छोड़िये और माता जी को बन्धन से छुड़ाने की भी चिन्ता कीजिये ।

राम—हां हां तुमने ठीक कहा लक्ष्मण ! (शबरी से) अच्छा देवी ! अब हमें आज्ञा दीजिये !

शबरी—किस ओर जाना है महाराज ?

राम—देवी ! लङ्का का राजा रावण पंचवटी से हमारी पत्नी को हर कर ले गया है, हमें उसी ओर जाना है और जानकी का ठीक पता लगाना है ।

शबरी—महाराज ! यहां से थोड़ी दूर पर किष्कन्धा पर्वत है जो लंका के रास्ते में पड़ता है। आप उसी ओर जाइये और वहां के राजा सुग्रीव से इस घटना का पता लगाइये !

राम—अच्छा देवी ! धन्यवाद ! तुमने बड़ी कृपा की ।

[राम-लक्ष्मण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य नवां

(किष्कन्धा पर्वत)

सुग्रीव—(दूर से राम-लक्ष्मण को देख कर हनुमान से)

गाना **(लावनी)**

दोहा—हनुमान मम मन्त्री सुनो लगाकर कान ।
रहता है मुझको सदा बाली का ही ध्यान ।।

सब ज्ञात है तुमको बाली ने जो मेरा हाल बनाया।
धन-वैभव सारा छीन लिया और घर से मार भगाया है ॥
किष्किन्धा पर है वास मेरा और कष्ट अनेकों सहता हूं।
फिर भी उस पापी के भय से भयभीत सदा ही रहता हूं ॥
है चैन कहां उसके मन को जीवित हूं जब तक दुनियां में।
दिन-रात लगा ही रहना है मेरे प्राणों की चिन्ता में ॥
वह देखो दो बलवान युवक हाथों में तीखे बाण लिये।
इस ओर बढ़े ही आते हैं लड़ने का सब समान किये ॥
अनुमान मेरा यह कहता है बाली के भेजे आये हैं।
प्राणों के मेरे ग्राहक हैं षड्यन्त्र रचाकर लाये हैं ॥
इसलिये पवनसुत जल्दी हो कुछ वेश बदलकर जाओ तुम।
मीठी बात करके उनके भावों का पता लगाओ तुम ॥

दोहा—फिर भी जो निकला कहीं सत्य मेरा अनुमान।
देना कुछ संकेत तुम, भाग बचाऊं जान ॥

हनुमान—महाराज ! आप कोई चिन्ता न कीजिये। मैं अभी ब्राह्मण का रूप बनाकर जाता हूं और उनके भावों का पता लगाता हूं।

हनुमान—(ब्राह्मण के वेश में राम के पास आकर)

गाना (डेढ़ मिसरी)

हो कौन महाराज ! कहां ठौर ठिकाना—
किस ओर है जाना।
किस वास्ते जंगल का पड़ा कष्ट उठाना—
घर छोड़ के आना ॥
कोमल हैं चरण, राह कड़ी, मार्ग है निर्जन
होता है चकित मन।
सुकुमार शरीर और कहां गेरवा बाना
मुख धूल रमाना।

किस देश की आशाएं हो किस वंश के तारे
मां-बाप के प्यारे।
क्या नाम है किस ग्राम से भगवन् हुआ आना
हम को भी बताना ॥
क्या बात हुई घर से किया तुमने किनारा
आनन्द बिसारा।
है ऐसी अवस्था में कठिन योग कमाना
और धूनी रमाना ॥
तुम देव हो गन्धर्व हो या विश्व के पालक ?
हो दुष्ट के नाशक
हरने को जगत-भार पड़ा लोक में आना
धनु वाण उठाना ॥

राम— गाना (डेढ़ मिसरी)

हे विप्र ! विधाता ने हमें कष्ट दिया है;
सुख छीन लिया है।
मिट सकता नहीं भाग्य में जो कुछ कि बदा है
वह होता सदा है ॥
दशरथ के हैं सुत और अवध घर है हमारा
प्राणों से भी प्यारा।
कुछ बात हुई ऐसी की घर छोड़ दिया है
बनवास लिया है।
बनवास में आये थे हम आज्ञा से पिता की;
और संग सिया थी ॥
इस बन में किसी दुष्ट ने सीता को हरा है;
यह कष्ट दिया है ॥
फिरते हैं इसी धुन में बयाबान में मारे;
अत्यन्त दुखारे ॥

पर आज तक उसका न कुशल खोज मिला है;
सब ढूढ लिया है ॥

हनुमान— गाना (लावनी)

दोहा—महाराज ! क्या बात थी क्यों छोड़ा घर बार ?
क्या कारण ऐसा हुआ बन को आये सिधार ॥
किस लिये बने हो बनवासी ! क्यों पिता ने ऐसी आज्ञा दी ?
क्यों संग तुम्हारे आये थे भ्राता लक्ष्मण और सीता जी ?
क्यों राजवस्त्र का त्याग किया और रूप बनाया सन्तों का ?
किस लिये बनों में बास किया आनन्द बिसारा महलों का ?
जो जो भी कष्ट उठाये हैं सब कह कर नाथ सुनादो तुम ?
करुणा करके महाराज मेरी यह शंका प्रथम मिटादो तुम ?

लक्ष्मण— गाना (सुनो जी रघुराई···)

टेक—कहूं सब गाथा—सुनो धर ध्यान !

अन्तरा १—महाराज ने किसी समय माता को वचन दिया था ।
उसने मांगा राज भरत को और राम बनवासा ॥
सुनो धर ध्यान·····

२—आज्ञा मान पिता की आये-बन-भरमण को भ्राता ।
सेवक आया साथ प्रभु के और जानकी माता ॥
सुनो धर ध्यान·····

३—पंचवटी पर कुछ ही समय से आकर वास किया था।
भाग्य गये बस लोट हमारे-हो गया निठुर विधाता॥
सुनो धर ध्यान·····

४—पापी, दुष्ट, नीच रावण ने हरी जानकी माता ।
बन बन मारे हम फिरते हैं कुशल चैन नहीं आता॥
सुनो धर ध्यान·····

राम—विप्रवर ! अब कुछ अपना भी तो वृतान्त सुनाइये !

हनुमान—(वेश उतार कर) **गाना** **(लावनी)**

दोहा—पवन-अंजनी-सुत प्रभो ! हनुमान है नाम ।
बानर जाति है मेरी, किष्कन्धा है धाम ॥

इस निर्जन पर्वत को स्वामी सब ऋष्यमूक गिरि कहते हैं ।
सुग्रीव हमारे राजा हैं जो इसी शिखर पर रहते हैं ॥
हूं मूढ़, कुटिल, माया के वश, आधीन, निठुर अज्ञान प्रभो ।
हैं आप दयासागर, पावन, स्वाधीन, सगुण भगवान प्रभो ॥
माया के अन्धे जीवों को भवसागर पार किया तुमने ।
संसार-भार हरने को ही स्वामी अवतार लिया तुमने ॥
जो मन के भाव हमारे हैं स्वामी अन्तर्यामी जानो ।
मुझ नीच अपावन को भगवन चरणों का सेवक ही जानो ॥

राम—हनुमान जी ! हमें आप से मिलकर बड़ी प्रसन्ता हुई । भगवान को धन्यवाद है कि आज हमारे मन की पूछने वाला तो मिला ।

हनुमान—महाराज ! आप कोई चिन्ता न कीजिये ! किष्कन्धा पर चल कर महाराज सुग्रीव को दर्शन दीजिये ।

राम—जैसे तुम्हारी इच्छा हो !

[हनुमान का राम-लक्ष्मण को कन्धे पर बिठाकर पर्वत पर चढ़ जाना]

सुग्रीव—(खड़े होकर) अहा ! मेरे अहो भाग्य हैं ! जो आप ने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया !

हनुमान—देखिये महाराज यही हमारे स्वामी सुग्रीव किष्कन्धा नरेश हैं जो अपने दुष्ट भाई बाली के हाथों बड़ा कष्ट पा रहे हैं । और नगर को छोड़ कर इस पर्वत पर जीवन बिता रहे हैं ।

राम—सुग्रीव जी ! मुझे आपके साथ सच्ची सहानुभूति है ।

सुग्रीव—(हनुमान से) मन्त्री जी ! मुझे भी तो इनका परिचय कराइये !

हनुमान—महाराज ! ये अयोध्या नरेश श्री दशरथ महाराज के राजकुमार हैं: किन्तु आजकल समय के प्रभाव से बड़ लाचार हैं । इनका नाम राम और ये इनके छोटे भाई लक्ष्मण जी हैं ।

सुग्रीव—महाराज! ऐसी क्या बात हुई जो राजभोगों का त्याग करके बन आना पड़ा ? इतनी छोटी अवस्था में ही सन्यासियों का जोवन बिताना पड़ा।

राम—सुग्रीव जी ! हमारी सौतेली माता कैकेयी ने किसी समय पिता जी से दो वरदान पाये थे। एक दिन अच्छा अवसर जान कर उन्होंने हमारे छोटे भाई भरत को राज्य और मेरे लिये चौदह वर्ष का बनवास मांग लिया। पिता जी को अपना प्रण निभाना पड़ा और मुझे घर छोड़ कर बन आना पड़ा। हमारी धम पत्नी सीता जी और अनुज लक्ष्मण जी भो हमारे साथ चले आये और हमने तेरह वर्ष बड़े आनन्द में बिताये। कुछ समय से हमने पंचवटी पर डेरा लगाया और उसी समय से हमारे भाग्य ने पलटा खाया। एक दिन लंका का राजा रावण सीता जी को हर कर ले गया और हमें महान संकट दे गया।

सुग्रीव—हां महाराज ! मैं एक दिन इसी पर्वत पर बैठा हुआ अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रहा था कि उसी समय एक विमान आकाश में उड़ता जा रहा था। जानकी जो बड़ा विलाप करती जा रही थो और अपने वस्त्र तथा आभूषण नोच-नोच कर नीचे गिरा रहीं थीं। उन में से कुछ को मैंने भी इकट्ठा कर लिया था और सावधानी से अपने पास धर लिया था !

राम—तो सुग्रीव जी ! वे वस्त्र और आभूषण हमें दिखलाइये।

सुग्रीव—(वस्त्र-आभूषण लाकर) ये लीजिये महाराज !

राम—(देख कर) हां-हां ये उसी साड़ी के टुकड़े हैं; ये उसी माला के मोती हैं, ये उसी हाथ का कंगन है यह उसी माथे का तिलक है। आह ! प्यारी सीते तुम कहां हो :—

है निशानी आज़ दुःखों दुखी के सामनें।
फाड़ कर परदा निकल आओ पती के सामने॥

गाना

अफसोस आज दिल की तमन्ना उजड़ गई।
बसते थे जिस में हाय वह दुनिया उजड़ गई॥
प्यारी तेरे ख्याल से आबाद था जो घर।
उस घर की आज देख ले शोभा उजड़ गई॥
मेरे लिये नहीं है कोई जग में आसरा।
जीवन कहां जो जीने की आशा उजड़ गई॥
देवी तेरे भवन की निशानी कहां है अब।
मन्दिर उजड़ गया है वह प्रतिमा उजड़ गई॥

राम—आह लक्ष्मण! देखो तो सही! ये आभूषण भी सीता के विरही होकर कैसे कान्ति-हीन हो रहे हैं। मानों उस के वियोग में आठ-आठ आंसू रो रहे हैं। आह! मैं कैसा पागल हो गया कि इन का पहचानना भी मुश्किल हो गया। लक्ष्मण! जरा तुम ही पहचानो क्या यह सीता का ही कुन्डल है।

लक्ष्मण—क्या बताऊं प्रभो!

सिर झुकाता था सदा चरणों में उनके नाथ मैं।
कुछ पता मुझको न था क्या कान में क्या हाथ में॥

गाना

तर्ज—(महा शोक में ऐसा पापन बनी हूं)

मुझे नाथ कुंडल की पहचान क्या है?
कभी उनका देखा नहीं कान क्या है॥
झुकाता था चरणों मे सिर मैं हमेशा।
किसी और भूषण का अनुमान क्या है?
जो पायल, छड़े और बिछुवे हों उनके।
तो मुश्किल मुझे उनकी पहचान क्या है?
क्षमा कीजिये नाथ मजबूर हूं मैं।
मुझे आपके सामने ज्ञान क्या है?

हनुमान—धन्य हो, धर्मावतार लक्ष्मण ! तुम धन्य हो ।

हद्द नहीं है मान की और ज्ञान की सीमा नहीं ।
पास भाभी के रहे पर कान तक देखा नहीं ।।

राम—अच्छा सुग्रीव जी अब अपनी भी तो कथा सुनाइये । भाई भाई को शत्रुता का कारण भी तो समझाइये ।

सुग्रीव—सुनिये प्रभो !

गाना

तर्ज—(नारी की हम कथा सुनाते हैं)

टेक—भाई-भाई के झगड़े की इक विषम कहानी है ।

अन्तरा—मायावी एक असुर था—बलवान महा निष्ठुर था ।।
अभिमानी मद में गरमाया; नगर द्वार पर आया ।
क्रोध में भरा तनिक ना डरा, दनुज की यही निशानी है ।।
इक विषम कहानी है । भाई·····

सुन कर उस का आवाहन—संग्राम छिड़ा अति दारुण;
असुर हार कर भागा रण से-अधम टला निज प्रण से ।।
चले हम साथ, लगाये घात, नहीं मन में हैरानी है ।
इक विषम कहानी है ।। भाई—···

बस एक गुफा के अन्दर—घुस गया असुर घबराकर ।
मुझे बालि इतना समझा कर यहीं रहो बन्धुवर ।।
गुफा में गया, क्रोध में भरा, नहीं शंका मन मानी है ।
इक विषम कहानी है ।। भाई···

इक मास बीत गया सारा—फिर बही रक्त की धारा ।
समझ पड़ा यह मेरे जी को, किया हनन बाली को ।।
उठाकर शिला,द्वार बन्द किया करम की गति न जानी है।
इक विषम कहानी है ।। भाई·····

कुछ दिन में बाली आया—मुझको नगरी में पाया ।
उलट पुलट कर तोड़ी काया दया कुशल ना आया ।।

नगर को तजा छोड़ कर भगा, कहूं क्या कठिन सुनानी है।
इक विषम कहानी है ।। भाई···—

हे नाथ ! एक दिन मयदानव का पुत्र मायावी रात्रि के समय नगर द्वार पर आया और हमें युद्ध के लिये बुलाया। बालो और मैं दोनों उसके पीछे दौड़े और कई योजन तक उसे भगाते फिरे। अन्त में वह दैत्य एक पर्वत की कन्दरा में घुस गया। तब वाली उससे लड़ने चला। प्रभो ! मैं उस जगह एक मास तक बैठा रहा। उस कन्दरा से रक्त की धारा बह निकली। मैंने समझा कि उस निशाचर ने बाली को मार डाला और अब आकर मुझे भी मारेगा। अतः मैंने प्राण-रक्षा के लिये एक भारी पत्थर से उस गुफा का द्वार बन्द किया और सम्पा पुर चला आया। मन्त्रियों ने बिना राजा के राज्य की व्यवस्था को बिगड़ते देखकर मुझे विवश किया और राजा बना दिया। परन्तु कुछ समय पश्चात् बालो उस राक्षस को मार कर घर आया तो मुझे सिंहासन पर देखकर बहुत गरमाया। हे नाथ! उसने मेरी एक न सुनी और मेरी स्त्री को छीन मुझे घर से निकाल दिया। उसी समय से मैं इस पर्वत पर रहता हूं और अनेक आपत्तियां सहता हूं। मातंग ऋषि के शाप के कारण बाली यहां नहीं आ सकता।

राम—निस्सन्देह बाली बड़ा निर्दयी है। किन्तु तुम कोई चिन्ता न करो हम उसे उसके पापों का फल अवश्य चखाएंगे और एक ही बाण में यमपुर पहुंचाएंगे।

सुग्रीव—किन्तु महाराज ! बाली को मारना साधारण काम नहीं है। आपके सामने दुंदुभी राक्षस का पंजर है जिसे मार कर उसने मातग ऋषि के आश्रम में फेंक दिया था और ऋषि ने क्रोधित होकर यह शाप दिया था कि यदि तू किष्कन्धा पर आयेगा तो जलकर भस्म हो जायगा।

राम—प्यारे सुग्रीव ! तुम कोई चिन्ता न करो। हमारा बाण उसे कदापि जीवित न छोड़ेगा।

सुग्रीव—किन्तु इस का प्रमाण !

राम—जो तुम चाहो !

सुग्रीव—तो देखिये ये सामने सात ताल वृक्ष खड़े हुए हैं, बाली जब बाण चलाता था तो चार-पांच को भूमि पर गिराता था।

राम—तो देखो ! मैं एक ही बाण में इन सबको गिराये देता हूं।

[बाण मारना-वृक्षों का गिरना]

सुग्रीव—धन्य हो प्रभो ! अब मुझ विश्वास हो गया कि आप अवश्य बालो को मारेंगे और मेरा कष्ट निवारेंगे। किन्तु पहाड़ पर उसे ब्रह्मा का वरदान है कि उससे युद्ध करने के लिये जो उसके सामने आयेगा उसका आधा बल बाली में चला जायेगा।

राम—तब तो हमें छिप कर ही मारना पड़ेगा।

सुग्रीव—हां महाराज ! मैं जाता हूं और उसे युद्ध के लिये बुलाता हूं, किन्तु याद रखिये कि यदि आप थोड़ी देर भी लगाएंगे तो मेरे प्राण-पखेरू सुरपुर को ही उड़ जाएंगे।

राम—नहीं ऐसा नहीं होगा। तुम जाओ।

सुग्रीव—अच्छा प्रभो ! सावधान !

[जाना—परदा गिरना]

दृश्य दसवां

[बाली मन्त्री सहित बैठा है]

बाली—मन्त्री जी ! क्या भाई भी ऐसे नीच होते हैं जो भाई को काल के मुख में डाल कर राज भोगों का आनन्द लेते हैं।

मन्त्री—क्यों नहीं महाराज ! आप के भाई सुग्रीव ने भी तो ऐसा ही व्यवहार किया था।

बाली—यही तो मेरा भी तात्पर्य है।

सुग्रीव—(ललकार कर) अरे दुष्ट बाली ! तूने मुझे बड़ा कष्ट पहुंचाया है। आज सुग्रीव अपना सारा बदला चुकाने के लिये आया है।

बाली—लो देखो ! आज फिर उसे उल्टी सनाई है, ज्ञात होता है कि मृत्यु उसे स्वयं ही यहां खींच लाई है।

मन्त्री—महाराज ! यद्यपि अज्ञान है, किन्तु फिर भी आपका भाई है, इसलिये उसका दोष क्षमा कर देने में ही बड़ाई है।

बाली—तो क्या तुम मुझे कायर बनाना चाहते हो ! सिंह को सियार से डराना चाहते हो ?

मन्त्री—नहीं महाराज ! मैं तो केवल इतना चाहता हूं कि……

बाली—(बात काट कर) बस चुप रहो ! मुझे तुम्हारी सीख की आवश्यकता नहीं है।

सुग्रीव—अरे अन्यायी ! क्या घर में छिपकर जान बचाना चाहता है, पाप का फल भोगने के लिये बाहर क्यों नहीं आता है ?

बाली—ओ कायर, कुबुद्धि-कमीने ! तुझे अब भी लाज नहीं आई ! अनेकों बार तो मेरे सामने से भाग कर जान बचाई !

सुग्रीव—आज सब मालूम हो जायेगा कि कायर और कुबुद्धि कौन है; भाग कर जान बचाने वाला कौन है ?

बाली—तो ठहर अभी आता हूं और तेरा झगड़ा सदा के वास्ते ही मिटाता हूं :—

बच निकल भागा था अब तक छल कपट से घात से।
आज बचने पायेगा हरगिज न मेरे हाथ से॥

[दोनों का युद्ध होना-सुग्रीव का भाग जाना]

बाली—चल भाग डरपोक ! फिर वही कायरता दिखलाई ! आखिर भाग कर ही जान बचाई।

[बाली का जाना-परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

[परदा-रास्ता, राम-लक्ष्मण, हनुमान खड़े हैं, सुग्रीव आता है।]

सुग्रीव—रक्षा ! हे नाथ, रक्षा ! आखिर वही हुआ कि उसने मेरा सारा शरीर चूर-चूर कर दिया।

राम—(सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेर कर) क्या करूं भाई ! तुम दोनों की सूरत इतनी मिलती है कि पहचानना कठिन हो गया।

सुग्रीव—यह तो ठीक है महाराज ! परन्तु यदि मैं भाग कर प्राण न बचाता तो अब तक परलोक पहुंच जाता।

राम—अच्छा लो अब यह माला पहन जाओ और एक बार फिर उसे युद्ध के लिये बुलाओ।

सुग्रीव—क्षमा कीजिये महाराज ! अब तो साहस टूट चुका है; यदि अब की बार फिर जाऊंगा तो निश्चय जानिये कि जीवित न आऊंगा ?

राम—क्या कहते हो सुग्रीव ! यदि वह ब्रह्मा और महादेव की शरण में भी जायगा तो भी राम के वाण से बचने न पायगा !:—

जाओ और उससे लड़ो बस केवल इतनी देर है।
देख लेना तुम कि फिर बाली मही का ढेर है॥

सुग्रीव—अच्छा प्रभो ! आप की आज्ञा सिर चढ़ाता हूं; और एक बार फिर काल के मुंह में जाता हूं।

[माला पहन कर जाना]

दृश्य बारहवां

(बाली का महल)

बाली—जब मनुष्य के नाश के दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि पहले ही मलीन हो जाती ! मूर्ख ने इतना भी न सोचा कि यदि मैं

किष्कन्धा पर्वत पर जा पाता तो क्या वह आज तक जीवित रह जाता।

सुग्रीव—(आकर) अरे अन्यायी बाली ! अब को बार मैं तुझे कदापि जीवित न छोड़ूंगा, तेरे अभिमानी सिर को आज अपने हाथों से तोड़ूंगा।

बाली—लो फिर आ गया कायर ! अरे दुष्ट क्या तुझे डूब मरने के लिये चुल्लू भर पानी भी नहीं पाता है जो बार-बार मेरे सामने चला आता है ! अच्छा ठहर ! फिर देखता हूं।

[जाना चाहता है, तारा रोक लेती है]

तारा—(हाथ पकड़ कर) ठहरिये प्राणनाथ ! इतनी जल्दी न कीजिये, पहले शंका का समाधान कर दीजिये।

बाली—क्या कहती हो तारा ! क्या मैं सुग्रीव से डर जाऊं ! एक कायर की ललकार सुन कर भी घर में घुस जाऊं !

तारा—यदि ऐसा ही होता तो मैं आप को कदापि न रोकती।

बाली—तो फिर क्या बात है ?

तारा—इतना तो आप भी समझते हैं कि यदि उसे किसी का सहारा न होता तो वह आप से लड़कर अपने प्राण क्यों खोता ?

बाली—जो कुछ तुम्हें कहना हो साफ-साफ कहो !

तारा—सुना है कि अयोध्या के दो राजकुमार किष्कन्धा पर्वत पर आये हैं और उन्होने सुग्रीव से मित्रता के हाथ मिलाये है।

बाली—तो फिर इस में भय की क्या बात है !

तारा—क्यों नहीं महाराज ! वे दोनों भाई बड़े बलवान और तेजस्वी हैं। सुना है कि उन्होंने अनेक राक्षसों का मार डाला है।

बाली—तारा ! तुम बड़ी डरपोक हो ! क्या बाली को मारने वाला आज तक संसार में जन्मा है ? हट जाओ, मुझे जाने दो ! आज उस दुष्ट को अपनी करनी का फल अच्छी तरह पाने दो।

तारा—(हाथ पकड़ कर) नाथ ? एक बार फिर सोच लीजिए।

गाना (लड़ना अच्छा नहीं भाई···)

टेक—यह क्रोध बुरा होता है-कुलमान-ज्ञान खोता है।

अन्तरा—(१) भाई-भाई को मारे; निन्दा हो जग में सारे।
कर डाले बिना विचारे, फिर पीछे से रोता है॥
यह क्रोध बुरा···

(२) बनवासी दोनों भाई; हैं उसके आज सहाई॥
यह चिन्ता मुझ को छाई, धीरज मन अब खोता है॥
यह क्रोध बुरा·····

(३) निज लाभ-हानि पहचानो-यह मेरा कहना मानो।
मत'कुशल'यह दिल में जानो,दुश्मन निर्बल होता है॥
यह क्रोध बुरा·····

बाली—(तारा का हाथ झटक कर) बस-बस ! रहने दे अपना उपदेश; बाली संसार में किसी का भय खाने वाला नहीं ! (जाना)

सुग्रीव—(बाली को देखकर) ओहो, निकल आये ! क्या स्त्री के आंचल में मुंह छिपाये पड़े थे।

बाली—अरे निर्लज्ज ! नीच ! पापी, चांडाल ! आज फिर तेरा मरने का जो चाहा है जो मेरे सामने निडर होकर चला आया है। कल तो भाग कर प्राण बचाये ही थे। दुष्ट, अभिमानी !

सुग्रीव तो क्या गालियां देकर ही वीर बनना चाहता है ! यदि साहस है तो दो हाथ क्यों नहीं दिखाता है :—
आज यह झगड़ा मिटाना है सदा के वास्ते।
बैर का बदला चुकाना है सदा के वास्ते॥

बाली—चल ! कायर यम के द्वार चल :
काल का है ग्रास पापी नर्क का ईंधन है तू।
मौत का खाजा है कुत्ते,चील का भोजन है तू॥

[दोनों का युद्ध होना, वृक्ष की आड़ से राम का बाण मारना बाली का गिरना]

बाली—आह ! धोखा ! धोखा ! :—

हाय किस पापी ने चालाकी यह मेरे साथ की।
चोट यह आकर लगी है तीसरे के हाथ की ॥

राम—(सामने आकर) बालो ! तुम ने क्रोध के वश होकर अपना कर्तव्य नहीं विचारा है, इसीलिये हम ने तुम्हें मारा है।

बाली—ओहो राम ! धर्म और नीति के पालने वाले राम ! तुमने तो धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है फिर यह धोखे का व्यवहार किस लिये किया है ? आप तो समदर्शी कहलाते हैं फिर यह भेदभाव क्यों दिखलाया है ? मुझे शत्रु मानकर सुग्रीव को मित्र किस लिये बनाया है :—

चौपाई—धर्म हेतु अवतार तिहारा।
धर्म कर्म निज कहां विचारा॥

राम—सुन बाली ! छोटे भाई की स्त्री, पुत्र-वधु, बहिन और कन्या इन चारों को जो पाप-दृष्टि से ताकता है उसके मारने में कोई पाप नहीं लगता है !

बाली—ठीक है ! परन्तु यदि मारना ही था तो सामने आकर मारा होता। मैं तो धर्म विहीन हूं तुमने तो धर्म विचारा होता ?

राम—भाई ! जब ब्रह्मा जी ने तुम्हें वरदान दिया है तो उसका तोड़ देना भी तो बुरा है।

सामने तुम पर असर होता नहीं पाषाण का।
इसलिये छिपकर किया है वार तुम पर वाण का॥

बालो—ठीक है महाराज ! आप के सामने मेरी चतुरता नहीं चल सकती। अच्छा, मेरा प्रणाम लीजिये और इतना आशीर्वाद दीजिये :—

चौपाई—जेहि-जेहि योनि जनम लहुं जाई।
चरण-कमल-अनुराग सवाई ॥

राम—हे बाली ! इस समय तुम्हारा मन पवित्र हो रहा है और इस

में उत्पन्न होने वाली इच्छाएं भी पवित्र हो हैं। इसलिए तुम निश्चिन्त रहो तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी। हां यदि कोई और इच्छा हो तो वह भी कहो! —

बाली—हां प्रभो! एक अभिलाषा और है। मेरा पुत्र अंगद जो बल और पराक्रम में मेरे ही समान है, इस समय नादान है। उसे अपनी शरण में लीजिये और उसकी सेवाएं स्वीकार करके अभयदान दीजिये।

राम—ऐसा ही होगा।

अंगद—(आकर) हाय पिता जी! आपको क्या हो गया? अब संसार में हमारा कौन है?

बाली—कुछ नहीं बेटा! यह तो संसार का नियम है, जो पैदा होता है, उसे मरना अवश्य है। अब मैं जा रहा हूं। याद रक्खो कि आज से तुम्हारे माता-पिता, स्वामी-सखा, मित्र और सम्बन्धी सब कुछ श्रीराम हैं इसलिये चरणों में सिर झुकाओ और आज से इनके अनुगामी बन जाओ।

राम—हां हां! आओ बेटा अंगद! आज से मैं तुम्हें अपने आश्रय में लेता हूं और अभयदान देता हूं:

[अंगद का राम के चरणों में सिर झुकाना और राम का उसके सिर पर हाथ रखना!]

बाली—(राम से) अच्छा नाथ! अब बोला नहीं जाता। क्षमा कीजिये (मरना)

[प्राण-त्यागना]

तारा—(आकर) नाथ! प्राणनाथ! जीवन आधार!
जा रहे हो छोड़कर मुझ को कहाँ मंझधार में!
आपके बिन कौन है मेरा सकल संसार में॥

राम—देवी! शान्ति करो!

तारा—हाय हाय! मेरे लिये संसार सूना हो गया; सारे जगत में अंधेरा छा गया। अब मैं किस के सहारे जीवित रहूंगी?

उठता है हाय मेरा संसार से सहारा।
छोड़ा है नाथ किस पर अंगद मेरा दुलारा॥

सुग्रीव—भाभी ! जीवन और मरण की घड़ी किसी से नहीं टल सकती। समझ लो कि तुम्हारा इतना ही जीवन साथ था।

तारा—हाय हाय मैं लुट गई !

गाना (महा शोक में ऐसी पापिन)

चले नाथ तुम नाव मंझधार में है।
जिधर देखू अन्धेर संसार में है॥
हुई आज बरबाद निर्भाग तारा;
लुटा नाथ अंगद तुम्हारा दुलारा;
हुई नाथ मन की अनोखी अवस्था;
निराशाओं की खलबली प्यार में है-जिधर···
कुशल मन को अब कौन धीरज बंधाये;
यहां कौन आशा के दीपक जलाये;
बहे जा रहे हैं बिना आसरे ही;
अनाथों की अब नाव जलधार में है–जिधर···

राम—देवी ! शान्ति करो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचों तत्वों से बना हुआ शरीर जो नाशवान होता है वह अब भी तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है, परन्तु वह अविनाशी आत्मा जो इस काया का साथ छोड़ गया है, जीने और मरने से स्वतन्त्र है न उसका कभी नाश हुआ है और न होगा। वह अब भी सूक्ष्म रूप से उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार इस स्थूल शरीर में थी। इसलिये यह रोना-धोना सब व्यर्थ है। संसार में ऐसा ही नियम है।

तारा—महाराज ! आपके अमृत रूपी वचनों ने मेरी वियोग रूपी अग्नि को शान्त कर दिया। अच्छा प्रभो ! अंगद को अपनी शरण में लीजिये और मेरा जीवन सार्थक कीजिये।

राम—देवी ! तुम अंङ्गद की ओर से तनिक भी शंका न करो। अंगद अब तुम्हारा नहीं मेरा पुत्र है।

तारा—धन्य हो प्रभो ! आपके समान दयावान और कौन हो सकता है जो शत्रु की सन्तान पर भी पुत्रवत् प्रेम करे।

राम—अच्छा सुग्रीव जी ! अब बाली का दाह सस्कार करो और दान पुण्य आदि कराके उस की आत्मा को शान्ति दो !

सुग्रीव—जैसी आज्ञा, प्रभो !

[सब का जाना और बाली के मृतक शरीर पर स्त्रियों का विलाप करना]

चौपाई—हा, बाली बलवान शरीरा। हाय बाली हाय रे।
धरणी पड़ा कैसा रणधीरा। हाय बाली हाय रे॥
अगद सुग्रन अनाथ बनायो। हाय बाली हाय रे।
तारा नारी कहा बिसराया। हाय बाली हाय रे॥

[परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(किष्कन्धा-वन)

[राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि उपस्थित हैं]

राम—भाई लक्ष्मण ! अब किष्कन्धा नगरी का राज्य राजा के बिना सूना पड़ा हुआ है। इसलिये तुम जाकर पुरवासियों ब्राह्मणों तथा पुरोहितों को बुलाओ और सुग्रीव को विधिपूर्वक राजा बनाओ !

हनुमान—महाराज ! राज्यभिषेक का कार्य तो आपके हाथ से होना चाहिये। वानर-समाज की ऐसी ही इच्छा है।

राम—हनुमान जी! मैं पिता की आज्ञा और अपनी प्रतिज्ञा के कारण चौदह वर्ष से पहले नगरी में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिये

तुम लक्ष्मण जी को ही ले जाओ और सारा कार्य विधिपूर्वक कराओ !

सुग्रीव—महाराज ! पहिले जानकी जी का पता लगाना चाहिये, यह कार्य तो पीछे भी होता रहेगा ।

राम—नहीं सुग्रीव जी ! ऐसे शुभ कार्य में विलम्ब करना उचित नहीं है । इसके अतिरिक्त अब वर्षा ऋतु आरम्भ होने वाली है और इस काल में आवागमन की असुविधा होने के कारण जानकी की खोज होना भी कठिन है ।

हनुमान—धन्य है ! दयालु भगवान आपकी उदारता को धन्य है ।

दे दिया प्रेमी को सब कुछ पास रखा कुछ नहीं ।
भक्त की चिन्ता है केवल अपनी चिन्ता कुछ नहीं ॥

सुग्रीव—ठीक कहते हो हनुमान जी ! मैं पतित,अपावन, वानर जाति और नीच प्राणी था । किन्तु प्रभु ने मुझे भी पवित्र, पावन और लोक का भूषण बना दिया । इससे अधिक कोमल स्वभाव और क्या हो सकता है ।

राम—सुग्रीव जी ! इन बातों को छोड़िये और नगर में जाकर प्रजा का पालन कीजिए । लक्ष्मण जी ! अब तुम चले जाओ और राज्यभिषेक का सारा कार्य कराकर इसी स्थान पर लौट आओ !

लक्ष्मण—जैसे आज्ञा प्रभो !

[सब का जाना, परदा गिरना]

[दृश्य परिवतन पर सुग्रीव का राज तिलक और आरती पर ड्राप]

नवां अंक

दृश्य पहला

[किष्कन्धा की तलहटी में राम का आश्रम]

राम— गाना (तर्ज—छा रही काली घटा···)

हाय यह बरसात गम की रात लेकर आई है।
मन की नगरी में अन्धेरी ही अन्धेरी छाई है ।।
आग सी भड़का रही है हाय यह ठण्डी हवा।
कह रही है दामिनी आशाओं का घर दूं जला।।
मेघ के गर्जन ने मन की कल्पना दहलाई है।
हाय यह बरसात·····।।
बोलते दादुर, पपीहा, मोर, विरही चौंकता;
आओ प्यारी अब सहन होती नहीं मनकी व्यथा;
बून्द जो लगती है तन पर तीर बनकर आई है।
हाय यह बरसात·····।।

राम—लक्ष्मण ! वर्षा का आगमन संसार को कितना सुन्दर और सुहावना बना देता है। परन्तु वियोगी के हृदय मे विरह की अग्नि भड़का देता है।

वन नदी नाले सरोवर सब ही हैं मनहर बने।
वृक्ष पत्ते फूल नित से नये सुन्दर बने।
मोर, सारस, मीन, दादुर मग्न हैं रस धार में।
इक वियोगी ही अकेला रो रहा संसार में ।।

लक्ष्मण—ठीक है प्रभो ! जानकी का भी यही हाल होगा। न जाने

वह किस प्रकार विपदा के दिन बिता रही होंगी ? आपकी याद में आंखों से अश्रु धारें बहा रही होंगी।

राम—यथार्थ है लक्ष्मण ! विछोह रूपी वज्र जिस हृदय पर गिरता है उसी को चूर चूर कर देता है। :—

विरह की वेदना जड़ जीव सब के प्राण हरती है।
जहाँ गिरती है यह बिजली वहीं विध्वंस करती है॥

लक्ष्मण—स्वीकार करता हूं, महाराज ! किन्तु एक प्रार्थना है यदि आज्ञा हो तो कहूं।

राम—हाँ हां अवश्य कहो।

लक्ष्मण—आप जैसे धीर वीर और गम्भीर पुरुषों के लिये विपत्ति में इस प्रकार अधीर होना कहां तक शोभा देता है ? क्या पुरुषार्थ के बिना संकट को कोई बांट लेता है ?

राम—ठीक कहते हो लक्ष्मण ! भाग्य का दूसरा नाम ही पुरुषार्थ है। इसी लिए कहता हूं कि यदि एक बार जानकी की सूचना पाऊं तो काल को भी जीतकर आपत्ति से निकाल पाऊं।

लक्ष्मण—(बाण चढ़ाकर) धन्य हो प्रभो ! परन्तु यदि आज्ञा हो तो पहले उस कपटी मित्र को ही ठिकाने लगाऊं जिसने आज तक भी मुंह नहीं दिखाया। वचन देकर भी जानकी का कोई पता नहीं लगाया।

राम—(शान्ति से) क्या तुम्हारा तात्पर्य सुग्रीव से है ? नहीं नहीं उसके साथ ऐसा व्यवहार कदापि नहीं होना चाहिये। जिसको एक बार मित्र बना लिया फिर भूल पर भी उसका सम्मान नहीं खोना चाहिये।

लक्ष्मण—परन्तु महाराज ! नीच लोग तो नर्मी को नहीं जाना करते, लातों के भूत बातों से नहीं माना करते।

राम—यह तो ठीक हैं, परन्तु वर्षा काल के लिये तो हमने ही उसे रोक दिया था, अभी तो कार्तिक मास प्रारम्भ ही हुआ है।

लक्ष्मण—तो भ्राता जी ? योजना बनाना और उसके लिये साधन जुटाना तो अभी से आवश्यक है।

राम—अच्छा तो तुम चले जाओ और कुछ भय दिखाकर सुग्रीव को अपने साथ ले आओ।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा महाराज।

दृश्य दूसरा

(सुग्रीव का मन्त्रणा गृह)

हनुमान—महाराज ! वर्षा ऋतु समाप्त हो गई; यात्री आने-जाने लगे किन्तु आपने जो वचन दिया था वह भी याद है ?

सुग्रीव—ओहो ! भूल गया, बड़ा अपराध हुआ। इस विषय-भोग ने मेरा सारा ज्ञान ही हर लिया।

अंगद—(आकर) महाराज ! अनर्थ हो गया। लक्ष्मण जी महान् क्रोधित हुए किष्कन्धापुरी पधारे हैं।

सुग्रीव—ओहो देव ! अब क्या होगा ? आज मेरी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी ?

अंगद—महाराज ! अब समय नष्ट न किया जाय और उनको शान्त करने का उपाय किया जाय।

सुग्रीव—अच्छा हनुमान जी ! तुम शीघ्र चले जाओ और विनय-याचना करके उन्हें यहां बुला लाओ।

हनुमान—जैसी आज्ञा महाराज !

[हनुमान का जाना और लक्ष्मण सहित वापस आना]

सुग्रीव—(खड़े होकर और चरण छूकर) क्षमा कीजिए, महाराज ! मुझ से अपराध हुआ।

लक्ष्मण—(क्रोध से) सुग्रीव ! तुमने मित्र बनकर हमें धोखा दिया है। जानते हो विश्वास घात का फल क्या होता है ?

गाना तर्ज—(कोई किसी ख्याल में···)

द्रोही बने हो मित्र के, धर्म का भय जरा नहीं,
अन्धे बने हो मोह में, जो कुछ कहा किया नहीं।
दुर्दिन तुम्हारे टल गये, धोखे के दाव चल गये,
मतलब सभी निकल गये,अब कोई मित्रता नहीं।
छल छिद्र द्रोह का चलन, होगा नहीं कभी सहन,
नाम हमारा लक्ष्मण, धोखा कभी सहा नहीं।
फन्दे में मोह जाल के, दो दिन में अन्धे हो गये,
अपने पराये कर दिये, भय तो 'कुशल' रहा नहीं।

सुग्रीव—नाथ ! विषय के समान दूसरा मद नहीं होता। यह क्षण भर में मुनियों के हृदय में मोह उत्पन्न कर देता है, बड़े बड़े ज्ञानियों का ज्ञान हर लेता है। आप तो दयावान हैं। मुझे क्षमा कीजिये और मेरे दोष पर ध्यान न दीजिए।

लक्ष्मण—अच्छा तो चलो ! तुम्हें महाराज बुलाते हैं।

सुग्रीव—चलिये प्रभो !

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(राम का आश्रम)

[लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि का आना]

सुग्रीव—(चरण छूकर) हे देव ! क्षमा कीजिये। आपकी माया ऐसी प्रबल है कि सुर-नर-मुनि सभी को वशीभूत कर लेती है। फिर मैं अज्ञान वानर, काम का दास प्राणी उससे कैसे बच सकता था ?

राम—(हंस कर) तुमने ठीक कहा सुग्रीव ! माया बड़ी प्रबल होती है अच्छा अब बीती बातों को जाने दो और सीता जी की खोज का प्रबन्ध करो।

सुग्रीव—बहुत अच्छा भगवन् ! (हनुमान से) हनुमान जी। समस्त सेना को हमारे सामने उपस्थित किया जाय।

हनुमान—सेना उपस्थित है, महाराज ! (जाना)

सुग्रीव—भाईयो! प्रभो रामचन्द्र जी का कार्य और मेरा उपकार इसी में है कि तुम चारों दिशाओं में चले जाओ और जंसे भी हो सके सीता जी का पता लगाओ। याद रखना कि जो कोई एक मास से अधिक लगायेगा वह मेरे हाथ से अवश्य मारा जायेगा।

वानर—जंसी आज्ञा महाराज ! बोलो भगवान राम की जय !

[सब का जाना]

सुग्रीव—(हनुमान आदि से) हे हनुमान, अंगद, जामवन्त, नल, नील आदि पराक्रमी वीरो ! तुम सब दक्षिण दिशा को चले जाओ और मनसा-बाचा-कर्मणा से जानकी का पता लगाओ।

हनुमान—ऐसा ही होगा महाराज !

राम—(हनुमान को निकट बुलाकर) भक्तराज हनुमान जी ! इस कार्य का होना आपके द्वारा ही सम्भव जान पड़ता है (सिर पर हाथ रखकर) अतः तुम निःसंकोच होकर जाओ और लो यह मेरी अगूठी भी ले जाओ। सीता जी का पता लगाना और सब प्रकार से समझाना तथा हमारा बल और पराक्रम प्रकट करके ढारस बंधाना। किन्तु एक मास से अधिक न लगाना और लौटती बार उनकी कोई निशानी भी लाना।

हनुमान—ऐसा ही होगा महाराज !

[चरणों में सिर नवा कर जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(समुद्र—तट)

नल--अहा ! वन, नदी, पर्वत और गुफाओं में बहुत कुछ ढूंढा परन्तु

कहीं जानकी का पता नहीं मिला। अब कौन सा मुंह लेकर लौट जाएं, इससे तो यही अच्छा है कि कहीं प्राण गवाएं।

नील—ठीक है सुग्रीव ने जो समय दिया था वह भी समाप्त होने का आया है परन्तु जानकी का कहीं पता नहीं पाया है।

अंगद—हां, सुग्रीव अब मुझे निश्चय मार डालेगा।

जामवन्त—तुम किस चिन्ता में पड़ रहे हो बेटा, राम को साधारण मनुष्य न जानो। वे साक्षात ब्रह्म हैं। उनके कार्य में बाधा कौन डाल सकता है?

[सम्पाती का आना]

सम्पाती—(वानरों को देख कर) अहा विधाता! तुम धन्य हो! आज तुम ने घर बैठे ही अहार भेज दिया! मैं बहुत दिनों से भूख के मारे बिल-बिला रहा था आज इन सबको खाकर अपनी भूख मिटाऊंगा!

हनुमान—हे मतिधीर जामवन्त जी! यह महान जीव कौन है जो हमें खाने की घात लगा रहा है।

जामवन्त—हनुमान जी सुनो! कश्यप ऋषि की वनिता नामक स्त्री के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। एक अरुण और दूसरा गरुड़। फिर अरुण के दो पुत्र हुए। एक सम्पाती और दूसरा जटायु। एक दिन वे दोनों भाई सूर्य को पकड़ने के लिये उसकी ओर उड़े। बड़ी दूर उड़ने पर सूर्य की गर्मी से घबरा कर जटायु तो लौट आया किन्तु सम्पाती उड़ता ही गया। अन्त में उसके पंख जल गये और वह मूर्छित होकर महेन्द्र पर्वत पर आ गिरा। उस पर्वत की गुफा में चन्द्र ऋषि तप करते थे सम्पाती ने उनकी सेवा की तब ऋषि ने वरदान दिया कि जानकी की खोज करते हुए वानर जब इधर आयेंगे। तो तेरे पंख निकल आएगे। उसी समय से यह बेचारा पंखहीन पक्षी यहां पड़ा हुआ अपना जीवन बिता रहा है।

हनुमान—धन्य है ! जटायु महाराज, तुम्हें धन्य है जो तुमने श्रीराम चन्द्र जी की सेवा में अपने प्राण गवा दिये।

सम्पाती—हैं ! क्या कहा! क्या जटायु ने प्राण गवा दिये! सुनाओ! हे वानरों ! मेरे भाई की मृत्यु का हाल खोल कर सुनाओ !

जामवन्त—पक्षी राज! तुम्हारा भाई जटायु पचवटी के सपीप जीवन बिता रहा था। जिस समय लंकेश रावण श्री राम की भार्या जानकी को हरकर ले जा रहा था तो उसने जानकी को छुड़ाने के लिये रावण से युद्ध किया किन्तु अन्याई रावण ने उसको मार डाला और भगवान रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से उसका दाह सस्कार किया।

सम्पाती—निस्सन्देह ! जटायु बड़ा भाग्यशाली था जो परोपकार में मारा गया (अपने पंखे टटोल कर) अहा तुम ठीक कहते हो। लो प्रभु राम चन्द्र जी कृपा से आज वर्षों के बाद मेरे पख निकल आए। अच्छा पहले मैं अपने भाई को तिलांजलि दे लूं फिर तुम्हें मार्ग बताऊंगा। तुम धन्य हो।

[समुद्र-तट पर सम्पाती का तिलांजलि देना]

हनुमान—अच्छा गृद्धराज ! अब हमें मार्ग बतलाइये !

सम्पाती—वह देखा ! समुद्र की दूसरी ओर रावण का अशोक वाटका नामक बड़ा रमणीक उद्यान है, जानकी उसमें पालना झूल रही है तुम नहीं देख सकते किन्तु मैं अपनी तीव्र दृष्टि से सब कुछ देख रहा हूं। अब तो जो कोई इस समुद्र को लांघ कर जायगा, वही सीता की सुधि लायेगा।

[सम्पाती का जाना]

हनुमान—लीजिये जामवन्त जी ! अब इतना पता तो मिल गया परन्तु ऐसा कौन है जो इस अपार समुद्र को लांघ जाए और जानकी का पता लाए ?

जामवन्त—ओह ! इस समय मैं बूढ़ा हो गया हूं। जब भगवान ने

वामन रूप धारण करके तीन पग में त्रिलोकी को नाप लिया था उस समय मेरी तरुण अवस्था थी और मैंने दो घड़ी में भगवान की सात परिक्रमा की थी किन्तु अब विवश हूं, यह महान् कार्य मुझ से न हो सकेगा।

नील—हां यह काम मेरी शक्ती से भी बाहर है।

नल—और मैं भी विवश हूं!

अंगद—मैं समुद्र लांघ कर जा तो सकता हूं! किन्तु लौट कर आने में सन्देह है!

जामवन्त—पवनसुत वीर हनुमान जी यह कार्य आपके बिना किसी से नहीं हो सकता! आपका बल पवन के समान है।

हनुमान—किन्तु महाराज! मुझे तो कुछ सन्देह होता है।

जामवन्त—नहीं! कदापि नहीं! ला पहले अपने जन्म की कथा सुनो, उसके सुनने से तुम्हें अपना बल और पराक्रम ज्ञात हो जायेगा!

हनुमान—सुनाइये महाराज!

जामवन्त—हिमाचल पर्वत पर कश्यप ऋषि अनेक साधुओं सहित रहते थे। एक दिन वहाँ एक बड़ा हाथी आया और ऋषियों की ओर दौड़ा किन्तु तुम्हारे पिता केशरी ने उसे मार डाला। इस पर प्रसन्न होकर ऋषियों ने वरदान दिया कि तुम्हारे घर में पवन जैसे वेग वाला, बलवान और बुद्धिमान पुत्र होगा। एक दिन तुम्हारी माता अंजनी पर्वत पर बठी थी कि पवनदेव ने उनके चीर को उड़ाकर शरीर को स्पर्श कर लिया उनके आशीर्वाद से कार्तिक मास, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, दिन मंगलवार को मेष लगन में तुम्हारा जन्म हुआ। एक दिन तुम्हारी माता तुम्हें गोद में लिये खड़ी थी कि तुमने उदय होते हुए लाल-लाल सूर्य को पकड़ने के लिये बांह उठाई। इस पर इन्द्र ने कुपित होकर वज्र मारा जिससे तुम्हारी ठोढ़ी मे दाग बन

गया और तुम्हारा नाम हनुमान हुआ। किन्तु तुरन्त ही तुमने सूर्य को भक्षण कर लिया। अन्त में देवताओं ने तुम्हारे पिता केशरी की अनेक प्रकार से विनती की और तुम्हें अजर-अमर होने का वरदान दिया तब तुमने सूर्य को मुख से निकाला।

हनुमान—(गरज कर और शरीर बढ़ाकर) बस महाराज! अब कोई चिन्ता न कीजिये। भगवान राम के प्रताप से पवन के समान जाऊंगा और माता जानकी की सुधि लेकर शीघ्र ही वापस आऊंगा। आप लोग मेरी यहीं प्रतीक्षा करना।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(लंका का द्वार)

[लङ्कनी पहरा दे रही है, हनुमान आते हैं]

लङ्कनी—अरे ओ निडर वानर! ऐसा निर्भय होकर कहां चला जा रहा है? क्या तुझे ज्ञात नहीं कि तेरे सिर पर काल मण्डरा रहा है!

गाना

जाता है किस ठोर बता क्या मौत तेरी यहां लाई है?
खौफ नहीं तुझको मेरा क्या जी में तेरे समाई है?
नाम लङ्कनी है मेरा लङ्का का पहरा देती हूं?
आकर तूने संकट में क्यों अपनी जान फंसाई है?
पांव बढ़ाया जो आगे को तुझे अभी खा जाऊंगी!
भाग यहां से जान बचाकर क्यों मरता बिन आई है?

हनुमान—

गाना

क्या बोली दुष्ट चण्डाली शामत तेरी आई है!
हनुमान का नहीं जानती इतनी राड़ बढ़ाई है?

राह खड़ी जो रोक रही है क्या मरना ही चाहती है!
देख गदा नादान हमारी क्यों इतनी गरमाई है !
चल-चल-चल-चल दूर परे हट यह काला मुंह मत दिखला।
जान रहा हूं मैं उसको जिसके बल पर इतराई है ॥

लङ्कनी—(गरज कर) अरे मूर्ख ! ठहर अभी आती हूं और दान्तों से चबाकर तुझे चूर्ण बनाती हूं।

[मुंह फाड़कर बढ़ाना, हनुमान का घूंसा मारना और लङ्कनी का पृथ्वी पर गिरना]

लङ्कनी—(घबराकर और खड़ी होकर) महाराज ! तुम श्री राम चन्द्र जी के दूत तो नहीं हो ?

हनुमान—हां, मैं उन्हीं का दूत हूं। बतला ! अब रास्ता छोड़कर अपने प्राण बचाना चाहती है या सीधी परलोक यात्रा को जाती है ?

लङ्कनी—(हाथ जोड़कर) बस महाराज ! अब दूसरा घूंसा न मारना नहीं तो मेरे प्राण-पखेरू स्वर्ग लोक को उड़ जाएंगे ! हा ! अब मुझे ब्रह्माजी का वचन याद आया जो उन्होंने रावण को वरदान देकर लौटती बार मुझसे कहा था कि जब तू एक वानर की मार खा खाकर विकल हो जायगी तभी राक्षसों की अन्तिम घड़ी आयेगी।

हनुमान—अच्छा यदि यही बात है तो मार्ग से हट जा, रास्ते में रोड़ा न अटका !

लङ्कनी—(एक ओर हटकर) लीजिये महाराज ! चले जाइये ! आपके कार्य में कौन बाधा डाल सकता है ?

सूख जाते हैं जलद, पर्वत तलक भी गल हैं।
राम जब अनुकूल हैं तो फिर सभी अनुकूल हैं।

[हनुमान का आगे बढ़ना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(विभीषण का भवन)

[द्वार पर मन्दिर बना हुआ है जिस पर राम-नाम लिखा है। हनुमान आते हैं]

हनुमान—अहा ? बाग, बगीचे, कुए-बावली, गली बाजार, महल-दरबार सभी देख डाले; रावण का महल भी छान मारा परन्तु कहीं जानकी का पता नहीं मिला। हे विधाता ! यह भवन किस धर्मात्मा का है ? जिस में एक ओर हरि-मन्दिर बना हुआ है और उस पर राम-नाम लिखा है; दूसरी ओर तुलसी के नवीन पौधे उग रहे हैं। धूप-दीप जल रहे हैं। हे परमात्मा ! इस राक्षसी नगरी में सज्जन का निवास कैसा ? दुष्टों के मध्य में महात्मा का वास कैसा ? (राम-नाम की ध्वनि सुनकर) अहा ! वे बाले ! मधुर ध्वनि में राम-नाम उच्चारण कर रहे हैं। अच्छा अब ब्राह्मण का रूप बनाता हूं और इस रहस्य का पता लगाता हूं। (रूप बनाकर) जय ! हरिभक्त की जय ! सन्तजन की जय।

विभीषण—(बाहर आकर और प्रणाम करके) अहा! विप्रवर! प्रणाम! अहो भाग्य ! कहिये महाराज ! कौन स्थान और क्या नाम है इस कठोर नगरी में आपका क्या काम है ?

हनुमान—भक्तराज ! क्या आप मेरी बातों का उत्तर देने की कृपा कर सकते हैं ?

विभीषण—हाँ हां महाराज ! अवश्य पूछिये ! मैं बिल्कुल ठीक उत्तर दूंगा।

हनुमान—भक्तराज ! यह नगरी वास्तव में बड़ी कठोर है; चारों ओर राक्षस बसते हैं; जिधर देखो उधर ही पाखण्ड दिखाई देते हैं फिर आप जैसे हरि-भक्त यहां किस प्रकार रहते हैं ?

विभीषण—कुछ न पूछो विप्रवर ! मेरी आत्मा यहां इस प्रकार कष्ट सहती है जैसे दान्तों के बीच में जीभ रहती है। यद्यपि मैं रावण का भाई और तामसी शरीर धारी हूं किन्तु भगवान राम की कृपा का भिखारी हूं ! अच्छा अब आप अपना परिचय दीजिये।

विभीषण-हनुमान का सम्मिलित गाना—तर्ज (डेढ़ मिसरी)

विभीषण—हे विप्र कहो कैसे हुआ लंका में आना,
निज देश बिराना
इस पाप की नगरी में यूं ही ठोकर खाना,
सन्ताप उठाना

हनुमान—हे भक्त हुआ जब से बुरे वक्त का आना,
बदला है जमाना
इक पल को नहीं चैन न ही ठौर ठिकाना,
पानी है न दाना

विभीषण—ऐसा भी यह दुर्भाग्य ने क्या रंग दिखाया,
घर बार छुड़ाया
सच हम से कहो कौन से संकट ने सताया,
क्या कष्ट है आया

हनुमान—कहने से किसी के भी कोई काम है आया,
संकट है बटाया
करनी का हर इक जीव ने फल आप ही पाया
और कष्ट उठाया

विभीषण—ऐसा न कहो विप्र तुम्हें राम दुहाई,
सच सच कहो भाई।
तन-मन से करूं दूर हरूं पीर पराई,
नीति यह बनाई।

हनुमान—(वेश उतार कर) अब जान लिया राम से लौ तुमने लगाई,
की धर्म कमाई।

संकोच हुआ दूर कहूं मन में जो आई,
तुम धर्म के भाई।

विभीषण—हां धर्म के भाई न करो कोई भी शंका,
होगा नहीं धोखा
बतलाओ हमें खोल के सब हाल ही मनका,
मिट जायगी शंका।

हनुमान—तुम जानते हो करके हरण मात सिया का,
रावण यहां लाया।
बतलाओ कहाँ रहती हैं अब जानकी माता,
बस यह ही है चिन्ता।

विभीषण—उत्तर की दिशा घोर सा जंगल है घना है,
उद्यान बना है।
उस मध्य ही सीता को गहन वास मिला है,
इतना ही पता है।

हनुमान—अच्छा महाराज ! धन्यवाद !

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(अशोक-वाटिका)

[एक ओर सीता जी पालने में झूल रही हैं दूसरी ओर से हनुमान जी आते हैं]

हनुमान—राज मन्दिर, घर, गली-कूचे, सरोवर, ताल, वन।
देख डाला कोना-कोना छान डाले सब भवन॥
है ठिकाना कौनसा जिसको कि देख आया नहीं।
जानकी का पर कहीं अब तक पता पाया नहीं॥
(सामने देखकर) हैं सामने ! यह सुन्दरी कौन है जो पालने में बैठी हुई शोक के आंसू बहा रही हैं। सम्भव है यही जानकी

हो अच्छा अब पास वाले वृक्ष पर चढ़ जाऊं और यहां की परिस्थिति का पता लगाऊं ।

[वृक्ष पर चढ़कर बैठ जाना]

सीता— गाना (गम दिये मुस्तकिल···)

कैसी दारुण घड़ी, लग रही है झड़ी, हाय सावन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ॥

रात दिन मेरी आंखों में पानी,
बह चली नाथ घुल-घुल जवानी,
मन की ठानी गई, सब कहानी गई, सारा जीवन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण;

सूने जगल में डरती हूं स्वामी;
रात भर याद करती हूं स्वामी;
काली-काली घटा, दामिनी को छटा, घन का गरजन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ॥

पीहू-पीहू करे जब पपीहा;
काप उठता है मेरा कलेजा;
मोर जब नाचते, स्वप्न हैं जागते, सुख का साधन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ।

अहा ! प्रभो ! प्राणाधार ? अब तो मेरी खबर लो। अब तो मुझे इस दुष्ट के बन्धन से छुड़ाओ :—

हो गई है कल्प से बढ़-बढ़ के इक-इक पल मुझे ।
अब घड़ी भर भी नहीं पड़ती है स्वामी कल मुझे ॥

आह ! मरना चाहती हूं पर मृत्यु नहीं आती; ऐसे समय यह पापिन भी मेरा हाथ नहीं बंटाती :—

क्या कहूं किस से कहूं सुनता है मेरी बात कौन ?
मौत भी जब भागती है फिर निभावे साथ कौन ?

[रावण का मन्दोदरी सहित प्रवेश]

रावण—सीता ! नहीं कह सकता कि तेरे रूप में क्या शक्ति है जो रात-दिन हृदय में तेरे प्रेम की ज्वाला दहकता है । :—

नहीं छिपाये छिप सके सुन्दर रूप अपार
मोती मिल कर धूल में चमकत है हर बार ।।

सीता—रंग-रूप संसार में लाखों वेश बनाए ।
जिसको जैसा ध्यान है वैसा ही दिखलाए।।

रावण—निस्सन्देह ! देखने में धोखा भी हो सकता है, परन्तु हृदय की बात कभी झूठी नहीं होती; मन की साक्षी किसी को धोखा नहीं देती :—

है तेरे ऊपर निछावर आज तन मन धन मेरा ।
तू मेरी होकर रहेगी कह रहा है मन मेरा ।।

सीता—मान ले कहना न हो तैयार अपने नाश पर ।
थूकता है किस लिये अज्ञान तू आकाश पर ।।

रावण—अच्छा सीते ! तुझे याद होगा कि मैंने तुझे एक मास का समय दिया था । अब बता ! कि तेरा क्या विचार है ? मेरा कहना स्वीकार है या फिर इनकार है ।

सीता—हां-हां इन्कार है, जो पहले था आज भी वही साफ इन्कार है । :—

आने न दूंगी आंच मैं नारी के मान पर ।
जो कुछ कि दिल में है मेरे वह ही जबान पर।।

रावण—सीता ! मैं फिर कहता हूं कि तू इस कारागार में वृथा ही कष्ट पाती है; अरी नादान ! अपनी हठ छोड़ कर जीवन का आनन्द क्यों नहीं उठाती है ।

यह जोबन, यह जवानी यह घड़ी क्या रोज आयेगी ।
चला जायेगा जब यह रूप तो फिर क्या बनायेगी ।।

सीता— जवानी और जीवन कब किसी का साथ देता है ?
है नारी-धर्म केवल जो सती का साथ देता है ।

रावण—अरी नादान ! ऐसी कल्पित बातों में न पड़; सोच समझ
और मेरा कहना स्वीकार कर।
लोक और परलोक का जो छत्राधारी है बना।
आज वह रावण तेरे दर का भिखारी है बना॥

सीता—धर्म को जो छोड़ बैठा उसका जीवन कुछ नहीं।
छत्रधारी हो, भिखारी हो, अधम जन कुछ नहीं॥

रावण—सीते ! मैं तेरे अलौकिक सौन्दर्य का मान करता हूं, इसलिये
कठोरता करते हुए डरता हूं। :—
कर चुका हूं प्रेम की विनती हजारों बार मैं।
प्रेम की बातों को तू खोती है क्यों तकरार में ?

सीता—मैं समझती हूं मगर तेरी समझ को क्या हुआ ?
क्यों पतन की ओर भागा जा रहा अन्धा बना ?
मोह में फंस कर न अब—अच्छे बुरे का ज्ञान है ?
वेद का पाठी है और कर्त्तव्य से अज्ञान है ?

रावण—मूर्ख ! हटेली, अज्ञान ! अब भी कहना मान।:—
झुकी है सम्पदा, माया जहां आंखें बिछाती है।
तू उस आनन्द और सुखको स्वयं ठोकर लगाती है॥

सीता—सम्पदा तेरी अरे नादान किस गिनती में है ?
धर्म जाता हो तो फिर यह जान किस गिनती में है ?

रावण—जान खोना जान कर यह काम है अनजान का।
धर्म कहती है जिसे तू खेल है नादान का॥

सीता—मान की चिन्ता न कुछ इज्जत का जिसको पास है।
धर्म को समझेगा क्या जो वासना का दास है॥

रावण—आ गले रावण के लग जा, बाज आ तकरार से।
वरना फिर होगा गले मिलना मेरी तलवार से॥

सीता—दो ही वस्तु हैं जगत में जानकी के प्यार की।
राम की बांहें हैं या है धार इस तलवार की॥

रावण—अच्छा ! तो अधिक मुंहफट न बन । रावण के सामने इतना न तन ! (तलवार उठाना)

मन्दोदरी—(रोक कर) शोक ! महा शोक, लका का राजा और इतना डरपोक ।

आज जिसके नाम से ब्रह्मांड भी भयभीत है ।
एक अबला पर उठाये हाथ यह अनुरीत है ।।

रावण—अच्छा, तुम्हारे कहने पर अपना तलवार रोक लेता हूं और इसे एक मास का समय और देता हूं । या तो सीधी राह पर आ जाएगी अन्यथा मेरे क्रोध की अग्नि में झोंक दी जायगी ।

[जाना]

सीता— गाना (सोहनी)

बिन पति पत्नि जगत में देह है बिन प्राण की ।
जल बिना हो मीन जैसे राम बिन है जानकी ।।
हे विरह ! तुझ को भी मुझपर तरस आता नहीं ।
हाय क्यों बेजान मे बाजी लगाई जान की ।।
हाय ऐ दुनिया की अंधी आंख ! क्या तूने किया ।
कुछ न पापिन दोष और निर्दोष की पहचान की ।।
शीघ्र आ ऐ मौत ! तू ही काट दे बन्धन मेरे ।
जानकी को आज है इच्छा तेरे वरदान की ।।

आह ! प्यारे राम ! क्या तुम इतने निर्मोही हो गये ? क्या तुम ने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया ? सच कहो क्या दुष्टों का दलन करने वाले बाण अब कुंठित हो गये ? क्या दीन-रक्षा की मर्यादा भी छोड़ बैठे हो ? आओ ! हे स्वामी ! अब तो आओ ।

बिन तुम्हारे नाथ ! अब जीवन मुझे भाता नहीं ।
हाय क्या अबला का तुम को ध्यान भी आता नहीं।।

हनुमान—आता है ! माता ! राम को तुम्हारा ध्यान हर समय आता है ।

सीता—हैं! कौन बोला ? आज राम का प्यारा नाम किसने पुकारा ?

पाप नगरी में कोई इस नाम का लेवा नहीं।
हे विधाता! क्या मेरे कानों का यह धोखा नहीं।।

हनुमान—नहीं माता ! धोखा नहीं, साक्षात है।

सीता—भाई ! तुम कोई भी हो, साक्षात मेरे सामने आ जाओ !

हनुमान—(सामने आकर) माता प्रणाम !

सीता—जीवित रहो ! यश प्राप्त करो ! कहो भाई! तुम कौन हो ?

हनुमान—कौशलाधीश श्री रामचन्द्र जी महाराज का दूत !

सीता—हैं ! राम का दूत ! क्या मैं स्वप्न देख रही हूं ?
यह कभी सम्भव नहीं, चिन्ताओं का परिणाम है।
राम के दूतों का लंका में भला क्या काम है।।

हनुमान—नहीं माता ! मैं सच कहता हूं कि राम के पास से आया हूं और आप का भ्रम दूर करने के लिये यह मुद्रिका भी लाया हूं (अंगूठी देना)

सीता—(अंगूठी पहचान कर) अहा ! उपकार ! परमात्मा महा उपकार !
मुद्रिका को देखकर हृदय कमल भी खिल गये।
यह निशानी क्या मिली है राम मानो मिल गये।।

हनुमान—जानकी माता ! हृदय में धीरज धरो; किसी प्रकार की चिन्ता न करो। मेरे पहुंचते ही राम यहां पधारेंगे और दुष्टों का नाश करके तुम्हारा संकट निवारेंगे।

सीता—धन्य हो भाई ! तुमने निराशा रूपी नदी में बहने वालो को आशा रूपी किनारे से लगा दिया, भगवान तुम्हें इसका बदला देंगे। परन्तु मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा। तुम कौन हो ?

हनुमान—माता ! मैं किष्किन्धा-नरेश सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूं ! जब भगवान राम तुम्हें खोजते-खोजते उस ओर पहुंचे तो हम से भेंट हुई और एक दूसरे की मित्रता हो गई ! अब मैं समुद्र पार करके आपकी सुधि लेने आया हूं और प्रभु का सन्देश आप के नाम लाया हूं ?

सीता—धन्य हो वीर ? तुम्हारा कल्याण हो ? कहो स्वामी जी और लक्ष्मण जी तो कुशल से हैं ?

हनुमान—हां माता जी ? सब प्रकार से कुशल हैं किन्तु आपके वियोग में प्रभु रामचन्द्र जी बड़े विकल रहते हैं, उन्हें एक-एक पल एक-एक कल्प के समान बीतता है। रात्रि कालरात्रा बनकर आती है और दिन पहाड़ सा प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि जानकी के विरह में मेरे लिये कमल काटे बन गये हैं; रस विष के समान है; जीवन नीरस हो गया है। यदि जानकी का पता पाऊं तो आकाश और रसातल को एक करके और काल को जीत कर उन्हें छुड़ा लाऊं ? सो हे माता ? तुम कोई चिन्ता न करो।

गाना

कष्ट का अब अन्त तेरे जानकी होने को है।
हाल पर तेरे दया भगवान को होने को है॥
किस लिये जीवन से है मायूस क्या मरती है तू।
याद रख रक्षा तेरे अब प्राण की होने का है॥
शीघ्र ही आकर करेंगे राम इन दुष्टोंका नाश।
नोक सीधी इस तरफ अब वाण की होने को है।
अब न अन्ध रह सकेंगे दुष्ट माया मोह में।
सब कुशल समझो कि हानि मान की होने कोहै।

सीता—हनुमान ? तुम्हारे सुन्दर वचनों को सुनकर मन को बड़ी शान्ति मिली, मेरे लिये इससे अधिक सुख और क्या हो सकता है कि प्रभु अपना दासी को याद रखते हैं।

हनुमान—हे माता ! प्रभु को तुम्हारा ध्यान किसी समय भी नहीं भूलता। अच्छा अब यदि आप कोई सन्देश देना हो तो दे दीजिये और लौटने के लिये विदा कीजिये !

सीता—हे वीर ! तुम मेरी दशा भली प्रकार देख चुके वह सब समझाकर कहना।

हनुमान—बहुत अच्छा माता जी ! आप निश्चिन्त रहें ! परन्तु इस वाटिका के सुन्दर फलों को देखकर मुझे भूख लग आई है, यदि आज्ञा हो तो फल तोड कर खालूं ।

सीता—भाई ! वैसे तो कोई हरज नहीं है किन्तु इसकी रक्षा बड़े-बड़े योद्धा राक्षस करते हैं !

हनुमान—माता जी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो राक्षसों का मैं कोई भय नहीं मानता !

सीता—हां-हां मेरी ओर से आज्ञा है !

[हनुमान का फल तोड़ना]

माली—अबे वानर ! क्या तेरी मौत आई है जो महाराज रावण के बाग में घस आया है और फलों के साथ वृक्षों को भी तोड़ गिराया है !

हनुमान—गिराया तो नहीं था किन्तु अब अवश्य गिराऊंगा और जो मुझे रोकेगा उसे यम के द्वार पहुंचाऊंगा ।

[माली तलवार लेकर बढ़ता है हनुमान उसे मार देते हैं]

दूसरा माली—अरे ! यह वानर तो बड़ा बलवान है मानो काल के समान है अच्छा अब जाता हूं और महाराज रावण को सब हाल सुनाता हूं ।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(रावण का दरबार)

रावण—हे दिग्गजों को हिलाने वाले अपार बल ! तेरे सामने बडे-बड़ अभिमानियों का सिर झुका हुआ है ! हे पृथ्वी को कम्पायमान करने वाले असीम पुरुषार्थ ! तेरे आगे देवताओं का साहस भी मन्द पड़ा हुआ है । आज यदि शक्ति है तो मेरी भुजाओं में; यदि तेज है तो मेरी निगाहों में । लंका का

सम्राट, लोक परलोक का विजेता, दानव और दिक्पाल का देवता हूं। धन-धाम का मालिक और ज्ञान-विज्ञान का पुतला हूं।

साथियों को प्राणदाता, शत्रुओं का काल हू।
क्रोध की बिजली हूं, गुस्से की दहकती ज्वाल हूं।।
हूं विनाशक लोक का और स्वर्ग का सरदार हूं।
देव की तकदीर हूं, संसार का करतार हू।।

मन्त्री—क्यों नही महाराज ! यदि आपका नाम सुन पाती है तो मृत्यु की छाती भी दहल जाती है :—

कौन शत्रु है जगत, पाताल और परलोक में।
बज रहा है आप का डंका तो तीनों लोक में।।

रावण -ठीक है ! अच्छा रण-भैरी के साथ-साथ पायल की झंकार भी सुनाई जाय; अप्सराओं को बुलाकर नाच रंग की सभा जमाई जाये !

मन्त्री—जैसे आज्ञा श्रीमान् ! द्वारपाल, गाने वालियों को हाजिर किया जाय !

द्वारपाल—बहुत अच्छा महाराज ! (जाना)

रावण—साका !

साकी—श्रीमान् !

रावण—जल्दी लाओ !:—

आज के दरबार में क्यों दौर फीका पड गया।
ला पिला जल्दी से ला ! मुरदार ढ.ला पड़ गया।।

साकी—लीजिये अन्नदाता :—

आज तो रगत नई सरकार मैखाने में है।
लीजिये दुनिया की मस्ती एक पैमाने में है।।

मेघनाद—साकी ! इधर भी लाओ—

छा गई काली घटा, बादल उठा है झूम कर।
है मजा चलता रहे पैमाना साकी घूम कर।।

साकी—लीजिये युवराज ! :—

प्याले में जिन्दगी की तमन्ना लिये हुये।
हाजिर हुआ हूं ऐश की दुनिया लिये हुये ।।

मन्त्री—साकी ! :—

जाता है किस तरफ को पियाला लिये हुये।
बैठे हैं हम भी तेरी तमन्ना किये हुये ।।

सभासद १—ऐसी पिला दे साकिया कुछ तर दिमाग हो।
आंखों में हो सरूर तो दिल बाग बाग हो ।।

सभासद २—मेरी तलब को देख के रंगत जमा के ला।
प्याले को छोड़ साकिया मटका उठा के ला ।।

अप्सरा—

गान।

साकी शराबे सुर्ख का पैमाना चाहिये।
बस यह तेरा सलूक महरबाना चाहिये ।।
आई बहार ऐश की दुनिया है लुट रही।
महरूम हम रहें तुझे ऐसा न चाहिये ।।
बोतल में है बहिश्त की राहत छिपी हुई।
अंजाम के खयाल को लाना न चाहिये ।।
शीशा हो एक हाथ में पैमाना एक में।
मस्ती का साज बाज भी मस्ताना चाहिये।।

रावण—वाह-वाह ! अच्छा रंग जमाया। सारे दरबार को मतवाला बनाया।

द्वारपाल—(प्रणाम करके) महाराज-अधिराज ! अशोक-वाटिका से एक माली आया है जो कोई फरियाद लाया है।

रावण—अच्छा ! आने दो।

[द्वारपाल का जाना, माली का प्रवेश]

माली—(शीश नवा कर) दुहाई है ! महाराज ! दुहाई है !

रावण—क्यों ! क्या आफत आई है ?

माली--महाराज ! अशोक वाटिका में एक वानर आया है जिसने बड़ा ही ऊधम मचाया है। फलों को तोड़ कर वृक्षों को गिरा डाला है और जब हम ने रोका तो एक मालो को मार डाला है।

रावण—ओहो ! कैसे आश्चय की बात है ? अच्छा बेटा अक्षयकुमार तुम अभी जाओ और उस दुष्ट बानर का जीता या मुरदा जैसे भी हो पकड़ लाओ।

अक्षयकुमार—जैसी आज्ञा पिता जी !

[अक्षयकुमार का जाना परदा गिरना]

दृश्य नवां

(अशोक-वाटिका)

[हनुमान फल तोड़ते और वृक्षों को उजाड़ते हैं अक्षयकुमार आता है]

अक्षयकुमार—कहां है ? वह दुष्ट वानर कहां है ? जो निडर होकर मृत्यु के मुंह में चला आया है और सारा वाटिका का वारान बनाया है। :—

कौन है जो काल के चक्कर में फंस कर आ गया।
मार सकता पर नहीं पक्षी जहां पर आ गया॥

हनुमान—(सामने आकर) अरे बालक ! तू कौन है जो जान से हाथ धोकर यहां चला आया है ! जा भाग जा, नहीं तो जान ले कि तेरा काल तुझे खींच लाया है :

अक्षयकुमार—धूर्त ! तू यह भी नहीं जानता कि मैं महाराजा रावण का पुत्र वीर अक्षयकुमार हूं; देवताओं का शत्रु और दस हजार दानव-सेना का सरदार हूं।

हनुमान—तभी तो आपे से बाहर हो रहा है ! अरे नादान ? नन्हीं सी जान को वृथा क्यों खो रहा है ?

युद्ध करने आ गया थे रग में आने के दिन।
दुधमु हे बच्चे अभी थे खेलनेखाने के दिन॥

अक्षय०—धूर्त वानर !

दुधमुहा कहता है क्या, विष का बुझाया तीर हूं।
नाग का बच्चा हूं, तेरी मौत की तस्वीर हूं॥

हनु०—मौत की तस्वीर का भी चूर कर देते हैं हम।
तेरे जैसों को मसल कर धूर कर देते हैं हम॥

अक्षय०—ओ कमीने, बदकार ! नीचता के ठेकेदार :—

ठहर पाजी अब मजा सारा चखा देता हूं मैं।
हड्डियों को पीस कर सुरमा बना देता हूं मैं॥

हनु०—अरे, नासमझ अज्ञान बालक !

खेल कर मुष्टिक से क्यों सिर पर बला लेता है तू
किस लिये बेटे का दुख मां-बाप को देता है तू॥

अक्षय०—अरे पापी ? एक गरीब माली को मार कर अब अक्षय कुमार के भी सिर पर चढ़ा आता है। ले देख, अब तू परलोक की हवा खाता है।

हनुमान—अरे जा ? तू मुझे क्या हवा खिलाएगा, अपने आप ही नरक का खाजा बन जाएगा।

[दोनो का युद्ध होना, अक्षय का मारा जाना]

दृश्य दसवां

(रावण का दरबार)

रावण—ओह ? एक साधारण से वानर का इतना साहस कि मेरा तनिक भी भय न खाए; और निडर होकर लंका में चला आये।

माली—(आकर) महाराज ? अनर्थ हो गया उस अन्याई वानर ने राजकुमार को मार डाला।

रावण—हैं ? क्या कहा ? राजकुमार को मार डाला ?

माली—हां, महाराज !

रावण—आह ! अन्याय हो गया। आखिर वह वानर है या यमराज का दूत !

मेघनाद—पिता जी! आप किस बात की चिन्ता में पड़ गये ? संकोच को छोड़िये और मुझे आज्ञा दीजिये। मैं या तो उस दुष्ट को पकड़ कर आप के सम्मुख लाऊंगा और या सुरपुर पहुंचाऊंगा।

रावण—अच्छा, अब तुम ही जाओ और उस दुष्ट को बन्दी बनाकर हमारे सामने लाओ !

मेघनाद—जैसी आज्ञा !

[मेघनाद का जाना. परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(अशोक-वाटिका)

[हनुमान टहल रहे हैं, मेघनाद आता है]

मेघनाद—कहां है वह उपद्रवी वानर ? जिसे अपने बल पर बड़ा अभिमान है ? अब जरा मेरे सामने आये और अपना पराक्रम दिखाये।

हनुमान—(सामने आकर) क्यों ? क्या तू पराक्रम दिखाने से रोक सकता है ?

मेघनाद—अरे अन्यायी ! याद रख ! अब तू जीता बच कर न जायगा, अपने किये का अवश्य दण्ड पायगा।

हनुमान—जा ! अरे मूर्ख ! मैंने तेरे जैसे बहुतों को देखा है, आकाश का थूका सदा मुख पर ही आता है।

मेघनाद—मुरदार ! नहीं जानता कि मैं दिकपालों को हिलाने वाला और देवताओं पर विजय पाने वाला मेघनाद हूं। मैंने पृथ्वी,

आकाश और रसातल को एक किया है: वायु, यम, अग्नि, वरुण और काल को उंगली के इशारे पर धर दिया है :—

दास हैं-लंका के सारे देव भी, दिकपाल भी।
सिर झुकाते हैं यहां अग्नि,वरुण भी,काल भी ।।
नाम सुनकर कांपता है स्वर्ग भी, पाताल भी ।
यक्ष भी,गन्धर्व भी,सरदार भी, महिपाल भी ।।
कौन है तीनों भुवन में जो करे अनुरीत रीत ।
इन्द्र को करके विजय,है नाम पाया इन्द्रजीत ।।

हनुमान—हां हां मैं जानता हूं कि तू रावण का पुत्र बड़ा साहसी और बलवान है किन्तु जो आया है उसका जाना भी प्रमाण है :—

नाम से गूंजे थ जिनके स्वर्ग भी आकाश भी।
कापते थ जिनके बल से हिमगिरि कैलाश भी ।।
हाथ में दोनों थ जिनके जिन्दगी भी नाश भी।
मौत जब आई तो इकपल का न था अवकाश भी।।
एक ही चक्कर में जब ढूढा निशा कुछ भी न था।
इस तरह से मिट गये मानो यहा कुछ भी न था।।

मेघनाद—बस-बस अब बातें न बना ! मेघनाद को मृत्यु का भय न दिखा :—

काल कहता है जिसे वह काल इस सरकार में।
हथकड़ी पहने पड़ा है बन्द कारागार में ।।

हनुमान—ठीक है, किन्तु याद रख !

जो चढ़ा आकाश पर इक दिन गिरा है गार में।
सच बता किस का रहा है बल सदा ससार में ।।

हनुमान—अच्छा तो आ और तू भी अपना पराक्रम दिखा।

[युद्ध होना, मेघनाद का थक जाना]

मेघनाद—(एक ओर) ओह ! यह वानर तो बड़ा बलवान है,यदि इस

पर ब्रह्म-शस्त्र नहीं चलाया जायगा तो यह कदापि काबू में नहीं आयगा।

[ब्रह्म-शस्त्र चलाना]

हनुमान—(स्वयं) ओहो! इस दुष्ट ने तो अपना अन्तिम दाव भी दिखाया और ब्रह्म-शस्त्र भी चलाया। अब यदि मैं इसे निष्फल बनाता हूं तो ब्रह्मा की महिमा को घटाता हूं। इससे तो यही अच्छा है कि इसी के हाथ पकड़ा जाऊं और दरबार में चल कर रावण का दर्शन पाऊं।

[मेघनाद का हनुमान को नाग फांस में फंसाकर ले जाना]

मेघनाद—चल अब तो सीधो तरह चल; बन्दी बनकर तो अधिक न उछल।

हनुमान—चल, अब तेरे पिता से ही सुलझेंगे।

[परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(रावण दरबार)

रावण—ओहो! एक वानर के पकड़ने में इतनी कठिनाई कि मेघ नाद ने भी इतनी देर लगाई।

द्वारपाल—महाराज की जय हो; इन्द्रजीत उस वानर को बन्दी बन कर ले आये हैं।

रावण—खूब! अच्छा आने दो।

[हनुमान सहित मेघनाद का प्रवेश]

मेघनाद—लीजिए पिता जी। यह दुष्ट वानर हाजिर है।

रावण—क्यों रे वानर। तू कौन है और किस के बल पर मेरी वाटिका को उजाड़ा है? अरे अभिमानी? क्या मेरा भय भी न विचारा है:—

बता सच फांद कर सागर यहां कैसे चला आया ?
उजाड़ा बाग कुल मेरा न भय मन में जरा लाया ।।

हनुमान—भय ! भय कामी को होता है या चोर को !
जिसे सत्मार्ग प्यारा है सचाई पर जो मरता है ।
उसे फिर खौफ है किसका वह कब दुनिया से डरता है।।

रावण—अच्छा तो तूने मेरो वाटिका का क्यों उजाड़ा है ? मेरे माली और अक्षय को क्यों मारा है ?

हनुमान—वाटिका को उजाड़ा है तुम्हारा दर्शन पाने के लिये ! और हत्या की है अपनी जान बचाने के लिये ।

रावण—आखिर तू कोन है ? किसका भेजा हुआ लंका में आया है ।

हनुमान—मैं हनुमान अन्जनी कुमार हूं; सुग्रीव का मन्त्री और महाराज रामचन्द्र का आज्ञाकार हूं ।

रावण—तो बता क्या सन्देशा लाया है ?

हनुमान—लंकेश ! तू वीर और बलवान है, बुद्धिमान तथा ज्ञानवान है । नीतिकुशल होकर तूने नाति पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया है, माता जानका को चुरा कर बड़ा नीच कर्म किया है। याद रख यदि कुमार्ग का छाड़कर सत्मार्ग पर नहीं जायेगा तो सिर धुन-धुन कर पछताएगा ?

रावण—क्या कहा ? पछताएगा ?

हनुमान—हां हां पछताएगा ! ऐसे नीच कर्म करने से तेरा सर्वनाश हो जाएगा ।

रावण—सर्वनाश ! अरे ज्ञान के शत्रु ! मेरा सर्वनाश :—
गुण, ज्ञान, बल में एक हूं, बुद्धि प्रवीण हूं ।
किस तरह नाश होगा कि जब नाश हीन हूं ।।

हनुमान—निस्सन्देह ! गुण, ज्ञान और बुद्धि अभी तक आप के पास विद्यमान है किन्तु याद रखिये कि पतन की ओर ले जाने वाला यही अभिमान है । इस अभिमान में किस-किस का

खोज नहीं मिटाया किस किस को काल का ग्रास नहीं बनाया ? :—

जम्भासुर जैसा वीर कहां, वाणासुर सा बलवान कहां ?
हिरणाकुश का अन्याय कहां त्रिशकू का अभिमान कहां ?
राजा बलि का वह दान कहां भस्मासुर का अज्ञान कहां ?
राहू केतू की चाल कहां दानव का अमृतपान कहां ?
जब पूर्ण कलाएं होती हैं तो चांद भी गलता जाता है ?
जो सूरज दिन में चढ़ता है वह शामको ढलता जाता है ?

रावण—ओह ! आश्चर्य ! एक नीच वानर इतना निडर हो जाए कि० रावण को नीति का उपदेश सुनाये :—

लो देखो आ गया वानर मुझे नीति बताने को।
चला है तुच्छ दीपक चान्द को रस्ता दिखाने को॥

हनुमान—इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अज्ञानी को ज्ञान बताना ही चाहिये; मार्ग भूले हुए को रास्ते पर लाना ही चाहिये।

रावण—बस बस ! ओ दुष्ट यदि अब भी जबान चलाएगा तो कठोर दण्ड पाएगा।

हनुमान—जबान चलाऊंगा किन्तु आपकी भलाई में। बातें करूंगा किन्तु आपकी भलाई में ! लंकेश ! अभिमान को छोड़ कर सत्मार्ग पर आइये ! जानकी को साथ लेकर प्रभु राम चन्द्र की शरण में जाइयें ?

रावण—नहीं तो ?

हनुमान—नहीं तो जानकी को कालरात्रि के समान समझिये; अपनी शक्ति और वैभव को दो दिन का मेहमान समझिये :—

अभिमान रहा किस का जग में जो चढ़ता है सो गिरता है।
वह बादल भी फट जाता है जो गरज-गरज कर घिरता है॥

रावण—ओ दुष्ट ! ऐसी बातें कहकर मेरे स्वाभाविक क्रोध को न जगा, अग्नि में तेल डालकर उसे और न भड़का। नहीं तो:—

जबां जो चल रही है उसके सौ टुकड़े बना दूंगा।
मसलकर धूल कर दूंगा तुझे नभ में उड़ा दूंगा।।

हनुमान—रावण ! निर्दोष का कोई क्या बिगाड़ेगा ? जो पाप कर्म से आप ही मर रहा हो वह दूसरे को क्या मारेगा ?:—

गिरेगा पृथ्वी पै आके इक दिन जो सिर महामद में घूमता है।
नशा वह आंखों से दूर होगा तू जिसकी मस्ती में झूमता है।।
तेरी तो शक्ति ही क्या है जिसपै तू मौत के दिन को भूलता है।
है कितना आकाश ऊंचा लेकिन चरण को पृथ्वी के चूमता है।।
चलेगी जब काल-चक्र आंधी यह तुच्छ जीवन निराश होगा।
अकड़ता फिरता है जिस विभव पर वह जलके पलभरमें नाशहोगा।।

रावण—क्यों नहीं ! यदि अपने स्वामी को बढ़ाकर मेरी कीर्ति को इस प्रकार नहीं घटाएगा तो टुकड़ा भी कहां से खाएगा वानर में यह स्वाभाविक गुण होता है कि :—

उछलता कूदता है नाच लोगों को दिखाता है।
परन्तु अपने स्वामी के लिये टुकड़ा कमाता है।।

हनुमान—लंकेश ! जो कुछ तू कहे सब ठीक है तू नहीं जानता कि राम के शत्रु की रक्षा करने वाला संसार में कोई नहीं; धर्म के विरोधी को बचाने वाला विश्व के विस्तार में कोई नहीं—

फंसा है मोह में अज्ञानता की नींद छाई है।
फिरी आंखों पै चरबी कुछ नहीं देता दिखाई है।।
चला है मार्ग पर उलटे, तुझे उलटी समाई है।
समझ और देख तो किस बात में तेरी भलाई है।।
पतन की ओर अपने आप क्यों नादान जाता है।
समझकर सांप को रस्सी,करों में क्यों उठाता है?

रावण—मूर्ख! अज्ञान तो आप बना है और नादान दूसरों को बताता है; सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव कर दिखाता है; आकाश और पाताल का पल्ला मिलाता है :—

मेरे बली दनुज कहां, वानर का दल कहां ?
ठहरे हमारे सामने मृत्यु में बल कहां ?
बकरी का सिंह से भी भला कोई मेल है ?
रावण का सामना कोई बच्चों का खेल है ?

हनुमान—ठीक है ! विनाश काले विपरीत बुद्धि ।
हुआ अज्ञान के वश, विष को अमृत जानता है तू ।
समन्दर बून्द को, पत्थर को कंकर मानता है तू ।।
मणि को वज्र, पारस का शिला गरदानता है तू ।
समझ कर लाल, पत्थर को गिरह में बांधता है तू ।।
बुरा भी जीव का अच्छा भी कर्माधीन होता है ।
किसी का नाश हो तो पहले बुद्धि-हीन होता है ।।

रावण—फिर वही बकवास ! अरे मूर्ख, अज्ञानी ! कुछ तो ज्ञान कर
मेरी शक्ति और वैभव का तनिक तो ध्यान कर—
दिन-रात नाचते हैं इशारे पै यम, वरुण ।
आज्ञा में चल रहे हैं मेरी जल, पवन, अगन ।।
झुकते हैं आके चरणों में नौ लोक तिरभवन ।
माथा नवा रहे हैं सितारे, मही, गगन ।।
आधीन मेरे जीव भी, मृत्यु भी, प्राण भी ।
है विष भी मेरे हाथ में अमृत का दान भी ।।

हनुमान—सब कुछ है परन्तु इतना और समझ :—
न जग में जीवित रहे विजेता, न वीर बलवान ही बचे हैं ।
न रण के बांके, न प्रण के पूरे, न ज्ञानी गुणवान ही बचे हैं।।
न सेना-नायक, नगुण ग्राहक, न लोभी धनवान ही बचे हैं ।
न सन्त योगी, न राज-भोगी, न उच्च कुलवान ही बचे हैं ।।
यह मान, यह सम्पदा, यह वैभव, न अन्त में कोई पास होगा।
जो काल है आज तेरे वश में उसी का एक दिन तू ग्रास होगा।।

रावण—ओह ! इतना मुंहफट ! इतना बेचाल ! (दांत पीस कर)
ओ चण्डाल !:—

करेगा बक-बक जो अब भी पाजी तो जीभ तेरी निकाल लूंगा।
पटक के पृथ्वी पै इक घड़ी में यह जान पापी निकाल लूंगा॥
जो जाके पाताल में छिपेगा पलट के भूमि निकाल लूंगा।
जो घूरती हैं मुझे बराबर वे आंख तेरी निकाल लूंगा॥
न तीनों लोकों में होगी रक्षा कोई बहाना नहीं मिलेगा।
समझ ले बैरी को मेरे जग में कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा॥

हनुमान—कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा छिपाने वाला नहीं मिलेगा।
पड़ी सड़ेगी यह लाश तेरी उठाने वाला नहीं मिलेगा॥

रावण—न बाज आता है बोलने से जबान फर-फर चला रहा है।
सहन मैं करता रहा हूं जितना, ढिटाई उतनी दिखा रहा है॥

हनुमान—ढिटाई करता ही जा रहा है अकड़ में भरता ही जा रहा है।
मैं दूत हूं इसलिये ही चुप हूं तू सिर पै चढ़ता ही जा रहा है॥

रावण—तू बन के जिनका है दूत आया बड़ाई जिनकी बखानता है।
हैं मेरे दासों के दास ऐसे तू जिनको भगवान मानता है॥

हनुमान—मैं जिनको भगवान मानता हूं वे तीन लोकों के हैं विधाता।
जो तू है सेवक तो वे हैं स्वामी जो तू भिखारी तो वे हैं दाता॥

रावण—संभल-संभल मुंह संभाल वानर तू आज जीने से तंग आया।
अरे महानीच, वन के जन्तु न तूने रावण का खौफ खाया॥

हनुमान—मैं खौफ खाजाऊं तेरा मूरख ! नहीं गुरु ने मेरे सिखाया।
वह क्या मिटायेगा दूसरों को जिसे कुकर्मों ने है मिटाया॥

रावण—बस ! अब नहीं सहा जाता है ! देखता हूं कि तुझे कौन बचाता है !:—

किया अपमान जो मेरा मजा उसका चखाता हूं।
तेरा विध्वंस करके लाश कुत्तों को खिलाता हूं॥

[मारने को खड़ा होता है, विभीषण रोक लेता है]

विभीषण—ठहरिये महाराज ! यह दूत है ! नीति में दूत का मारना अनुचित कहा है। इसलिये इसे क्षमा किया जाय या मृत्यु के अतिरिक्त कोई और दण्ड दिया जाय !

रावण—(हसकर) अच्छा देखो ! बानर को अपनी पूंछ बहुत प्यारी होती है ! इसलिये इसकी पूंछ में कपड़ा बांधकर तेल निचोड़ दिया जाये और फिर उसमे आग लगाकर इसे छोड़ दिया जाये !

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज !

[हनुमान को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(लंका दहन)

[हनुमान की पूंछ जल रही है और वे नगरी में आग लगाते फिर रहे हैं।]

हनुमान— गाना

चलो तुम पवन निराली चाल
रूप भयंकर धारण करके करो लक पामाल ॥
चलो तुम पवन·····
सर सर करते चलो वेग से उड़ें भवन तत्काल।
भक्त विभीषण के गृह-कुल की करो 'कुशल' प्रतिपाल॥
चलो तुम पवन·····

[हनुमान का जाना, लंका वासियों का रोते पीटते आना]

गाना (तर्ज—नाश तेरा हो राजा रावण)

टेक—विपता पड़ गई हम दोनों पर उजड़ गये घर बार।
नहीं ठिकाना अब रहने को रोते हाथ पसार ॥

पहला—संकट से कौन बचावे ? आफत यह कौन टलावे ?
हर तरफ आग ने घेरा हमको, हो गये सब लाचार ॥
विपता पड़ गई·····

दूसरा—दुख सहा नहीं अब जाता, जल गई है मेरी माता।
अब खड़ा अकेला मैं रोता हूं बिछड़ गया परिवार ॥
विपता पड़ गई·····

तीसरा—अग्नि ऐसी है भड़की, मेरी जल गई चम्पा लड़को।
लड़के वाले जल गये सारे, रोऊं घाड़ें मार॥
विपता पड़ गई·····

चौथा—वह चौपट कर गया बन्दर-जल गया काट का अस्तर।
हैट, पैन्ट, नकटाई जल गयी जूता तस्मेदार॥
विपता पड़ गई ·····

[चारों ओर से हाहाकार मचना, घरों का जलते हुए दिखाई देना, लंकादहन के भयानक दृश्य पर परदा गिरना।

दृश्य चौदहवां

(अशोक-वाटिका)

[सीता जी पालने में झूल रही हैं, हनुमान जी आते हैं]

हनुमान—अच्छा माता जी ! अब रावण से मिलकर भली प्रकार समझा आया और चेतावनी के रूप में लका को भी जला आया अब विदा कीजिये और अपना सन्देश भी दे दीजिये।

सीता—अच्छा तात ! जीवित रहो ! तुम्हारी कीर्ति अमर हो ! लो यह मेरी चूड़ामणी लेते जाओ (चूड़ामणी देना) प्रभु के चरणों में मेरा प्रणाम कहना और इतना और निवेदन कर देना:—

गाना (तर्ज—गम दिये मुस्तकिल···)

नाथ मन है विकल, नैन बरसायें जल, काले बादल;
बह गया मेरी आंखों का काजल···

सूना वन, नभ में घन, रात कारी;
ससनाती पवन मन दुखारी।
कैसे विपता सहूं, आप के बिन रहूं, प्राण निबल;
बह गया मेरी·····

भूल बैठे हो जब नाथ तुम ही;
छोड़ बैठ हो जब साथ तुम ही।

कौन विपता हरे, मुक्त आकर करे, किस का है बल?
बह गया मेरी·····
अब तो अन्तिम घड़ी आ रही है;
जानकी जान से जा रही है।
आओ संकट हरण, याद करके परण, भक्त वत्सल !
बह गया मेरी·····

हनुमान—माता जी ! आप निश्चिन्त रहें ! मैं प्रभु से आपकी सारी व्यथा सुनाऊंगा। मेरे लौटते ही सारी वानर-सेना चढ़ादी जायेगी और लंका को ईंट से ईंट बजादी जायेगी।

सीता—अच्छा पुत्र जीवित रहो ! तुम्हारा कल्याण हो !

हनुमान—अच्छा, माता जी प्रणाम !

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य पन्द्रहवां

(समुद्र तट)

[जामवन्त-अंगद आदि प्रतीक्षा कर रहे हैं]

अंगद—महाराज जामवन्त जी ! समय बीता जा रहा है किन्तु हनुमान जी नहीं आये ! अब क्या होगा ?

नल—आज तो कार्तिक की पूर्णिमा भी हो गई। आज उनको अवश्य ही लौट आना चाहिय था।

जामवन्त—बेटा ! तुम हनुमान जी के पराक्रम को नहीं जानते। वे अवश्य लौट कर आयेंगे और जानकी जी जहाँ भी होंगी वहीं से उनकी सुधि लायंगे।

अंगद—(प्रसन्न होकर) हां हां, वह देखिये ! हनुमान जी हां आ रहे हैं।

जामवन्त—मैं कह न रहा था कि वे अवश्य आयेंगे !

[हनुमान का प्रवेश]

जामवन्त—(हनुमान के गले मिल कर) धन्य है हनुमान जी ! आज हम लोगों का नया जन्म हुआ है !

अंगद—हां महाराज ! आप क्या मिल गये मानो तड़फती हुई मछली को अगाध जल मिल गया। कहिये ! माता जी को सुधि मिल गई।

नील—और यह बताओ कि आप लंका में किस प्रकार पहुंचे !

नल—और रावण से भी भेंट हुई या नहीं ?

जामवन्त—और अधिक समय लगने का क्या कारण हुआ।

हनुमान—हे वानरों ! तुम धन्य हो कि प्रभु के कार्य के लिये इतने उतावले हो रहे हो किन्तु देखो प्रभु भी व्याकुल हो रहे होंगे इस लिये यहां से शीघ्र चलो; मैं मार्ग में ही सारा वृतान्त सुनाऊंगा।

जामवन्त—हां हां ठीक है, चलो ! यहां समय खोना उचित नहीं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य सोलहवां

(राम का आश्रम)

(राम लक्ष्मण, सुग्रीव आदि प्रतिक्षा कर रहे हैं)

राम—विरह ! तू दबी हुई अग्नि के समान है जो भीतर ही भीतर सुलगता रहता है; या प्रेम का अथाह सागर है जो हिलोरे मारता हुआ निरन्तर छलकता रहता है। पता नहीं, नींद कहां चली गई ? आराम कहां जाकर सो गया ? सूर्य निकलता है और छिप जाता है; तारे आंख मिचोनी खेलते हैं और अलोप हो जाते हैं। घड़ियां बीत रही हैं, दिन भागे जा रहे हैं ! परन्तु क्या वह समय लौट कर नहीं आयगा :—

जब दिवस आनन्द के थे, जब सुहानी रात थी।
वन नहीं लगते थे वन, महलों ही जैसी बात थी॥